पुस्तक मंगवाने वालोंको सूचना.

बिकानेर निवासी श्रीयुत शेठ बहादरमल अभयराज कोचरके तरफसे ज्ञानखातेमें लगानेके लिये आयेले एकसो रुपीये पालीताणासें सद्गुणानुरागी मुनिराज श्री कर्पूरविजयजी महाराज साहेबने हमको यहा भेजवाये इस लिये यह पुस्तक मे की ५०० प्रतिको उपरके टायटल पेज पर बिकानेरवाले शेठ बहादरमल अभयराजका नाम प्रकाशक तरकिे छपवाया है और वो पुस्तको माहाराजश्रीके सूचनानु सार टायटल पेजके पीछले पेज पर छपे हुए चार जगो पर भेट देनेके लिये रखी है. सो खपी जनोने वहासे मंगवा लेना.

इस पुस्तककी एक हजार प्रति बाइडिंग नही करवाते छुटे फरमे वैसेही रखे है. सो इसी तरह और कोइ सज्जनोकुं यह पुस्तक भेट देनेकी इच्छा होवे तो उनोने एकसो रुपीये हमकु भेजनेसे उन्होके लीखने मुजब नाम गांव इस पुस्तककी पांचसो प्रतिके उपरके टायटल पेजपर छपवाकर इसी नमुनेका बाइडिग करवाके उन्होकी इच्छानु सार भेजी जावेंगी. इससे दुसरे नमुनेका या जिल्द बाइडींग करवानेकी इच्छा होवे तो उसका खर्च जादा लगेगा उस बाबत प्रकाशक या संग्राहक कुं पुछपाछ कर लेना.

यह पुस्तक साधु साध्वी और लायब्रेरी पुस्तकालय आदि संस्थाओको प्रकाशक तरफसेभी भेट देनेकी है सो उसके खपी जनोने एक प्रतिके वास्ते पोष्ट पेकिंग खर्चके लिये दो आनेकी पोष्ट टीकीट भेजकर प्रकाशक के पास से मंगवा लेना.

पुस्तक मंगवानेवालोने किंमत और पोष्ट खर्चकी रकम पोष्ट टीकीट या मनीआर्डरसे प्रथम ही भेजना. व्ही. पी. से मंगवानेमें एक पुस्तककुं पोष्ट खर्चके शिवाय और पांच आने खर्च जादा आता है.

पुस्तकोंका सुचीपत्र.

हमारा बुकसेलरका या पुस्तक प्रसिद्ध करनेका धंदा नही है. परंतु हमारे घरके और हमारे मारफत दुसरोंके घरके शुभ खातेमें खर्च करनेकी रकममेंसे ज्ञानखातेमें खर्च करनेके इरादेसे आजतक कितनेक पुस्तक शास्त्री (बाळबोध) टाइपमें छपवाइ है. उसमें के जो नमुने हमारे पास आज शिलकमें रहे है उन्होके नाम, और किमत.

क्रम	नाम	मूल्य. रुपीये—आने	पोष्ट पेकिंग आने—पाइ
१	चैत्यवंदन स्तुति स्तवनादि संग्रह	०—१०	३ — ०
२	सूक्त मुक्तावळी	१— ०	४ — ०
३	श्रीशत्रुंजय महातिर्थादी यात्रा विचार	०— ६	२ — ६
४	अष्ट प्रकारी तथा स्नात्र पूजा	०— ३	१ — ६
५	जिनंद्रभक्तिप्रकाश भाग पहलो	०— ७	३ — ०
६	,, ,, ,, भाग दूसरा	०— ५	२ — ०
७	श्री चिदानंदजी कृत पद संग्रह भाग पहेलो	०— ३	१ — ६
८	सद्बोध संग्रह भाग पेहेला	०— ४	२ — ०
९	पोषधादि और उपधान विधि	भेट	२ — ०

इस पुस्तकोंमें क्रम १ की प्रति ९, क्रम २ की प्रति १० क्रम ३ की प्रति ८ क्रम ४ की प्रति २२ इतनीही शिलकमें रही है. जादा नही होनेसे खपी जनोंने जलदी मंगवा लेना.

पुस्तक बेचनेके जो रकम आती है उसमें हमारा संसारी स्वार्थ नही है. उस रकमसे और पुस्तक छपवानेमें या दुसरे संस्थाओंने छपवायेले जादा प्रति प्रचारार्थके लिये मंगवाये है. पुस्तक मंगवानेवालोंने मूल्य और पोष्ट खर्च पहिलेही पोष्ट टीकीट द्वारा या मनीआर्डर द्वारा भेजना. व्ही. पी. से एक पुस्तक मंगवानेमें पोष्ट खर्चके शिवाय और पांच आना खर्च जादा आता है.

नेताजी पेठ, ३५६, पुना सिटी.— शाह शिवनाथ लुंबाजी पोरवाल.

प्रास्ताविक निवेदन.

सूज्ञजनोंको पवित्र ज्ञानामृतपानका लाभ थोडेमें मिले इस हेतुसे अनेक मुनिराज और कविगणोने सूत्रसिद्धान्तोंमेंसे सार निकाल कर भिन्न भिन्न भाषाओंमे ग्रन्थलेखन करते आये है और करवाते है इसी मुजब सद्गुणानुरागी मुनिराज श्री कर्पूरविजयजी महाराजने भी गुजराती भाषामें जैन हितोपदेश, जैन हितबोध आदि कितनेक ग्रंथ लिखे हैं. ए ग्रन्थ बहुत बरसके पेहेले म्हेसाणाके श्री जैन श्रेयस्कर मण्डल की तरफसे प्रकाशित हुए. इस मंडळने जैन हितबोध और जैन हितोपदेश भाग १ ए ग्रन्थ हिन्दी भाषामें भी मुद्रित किये. लेकिन आज ए किताब मिलते नहीं. ए पुस्तक ऐसे हैं कि जिनमें अध्यात्मिक धर्माचार विषयक तथा व्यवहारनीतिका बहुत कीमती उपदेश एक साथ सीधे साधें भाषामें पढनेको मिल सकता है.

इन पुस्तकोंमेंसें कुछ विषय लेकर और अन्यान्य ग्रन्थ पढतें हुए हमने जो टिप्पण किये थे वोभी लेकर हमने संवत् १९८८ में 'विविध विषय संग्रह भाग पेहेला' इस नामका ग्रन्थ शास्त्री टाइप और गुजराती भाषामें प्रकाशित किया था. आम जनताको यह किताब बहुत पसन्द आया लेकिन इनकीभी प्रतियाँ अब शिल्लक नही है. परमपूज्य सद्गुणानुरागी मुनिराज श्री कर्पूरविजयजी महाराजके साथ पत्रव्यवहार करके महाराज साहेबकी आज्ञानुसार जैन हितोपदेश भाग पेहेला और जैन हितबोध ये दो हिन्दी भाषाके ग्रन्थोंमेंसे उपयुक्त विषय लेकर हमने प्रकाशित करना शरू किया. इसमें गुजराती भाषामेंके विषय हो तो ग्रन्थ और भी उपयुक्त होगा ऐसा मानकर हमने जैन हितोपदेश भाग २—३ मेंसे कुछ विषय लेकर अन्यान्य ग्रन्थोंमेंसे ली हुई माहिती के साथ यह ग्रन्थ छपाया है. इसमें बोधकारक प्रश्नोत्तर तथा दृष्टान्त कथन और वचनों और पद्यो आदिका कीमती

संग्रह दोनो भाषाओंमें है. इससे यह किताब गुजराती तथा हिन्दी भाषाभाषी स्त्रीपुरुषोंको उपयुक्त होवेगा.

इस ग्रन्थ के प्रकाशनमें सद्गुणानुरागी मुनिराज श्री कर्पूरविजयजी महाराजने पालीतानासे पत्रव्यवहार के द्वारा बारबार जो सलाह दी है और हमारे मित्र श्रीयुत लक्ष्मण रघुनाथ भिडेजीने भाषा सुधारनेमें तथा प्रूफ करेक्शनमें जो सहाय्यता दी है उस लिये उक्त दोनों सज्जनोंके हम ऋणी है.

जिस प्रमाणसे द्रव्य सहाय्य हो उसी प्रमाणमें ऐसे ग्रन्थोंका कद बढाया जा सकता है. और भी संग्रह हमारे पास है सो उचित सहाय्य मिलनेपर इसका दूसरा भाग भी प्रकाशित किया जायगा.

ग्रन्थमें जो भूल या अशुद्धि नजर आवे सो कृपा करके हमको लिखना जोकि पुनरावृत्तिके समय दुरुस्त की जायगी.

सवत १९९३ वीर सवत २४६३
कार्तिक सुदी ५ (ज्ञान पचमी)
गुरुवार ता० १९ नवबर १९३६

संग्राहक
शाह० शिवनाथ लुंबाजी पोरवाल
३५६ वेताळ पेठ मु० पुना सिटी.

:o:

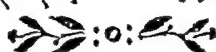
(अनुक्रमाणिका पृष्ठ ८ के आगे का अनुसंधान निचे मुजब)

सद्बोध पद्यावली पद ६ नी अनुक्रमाणिका.

विषयानुक्रमणिका (हिन्दी विभाग)



१ सर्वज्ञ कथित तत्व रहस्य बावत ६७ पृष्ठ १ से ३६ तक के नाम.



गुजराथी भाषा विभागनी अनुक्रमणिका

(एना आगळनी अनुक्रमणिका पाछळना पान ५ उपर जुवो)

ॐ

॥ वन्दे श्री वीरमानन्दम् ॥

* सर्वज्ञ कथित तत्व रहस्य *

१ जीवदया (जयणा) हमेशा पालनी चाहिये.

चलते, बैठते, उठते, सोते, खाते, पीते या बोलते याने यह हरएक प्रसंगमें प्रमादसे पिराये प्राण जोखममें नहि आ जावे तैसे उपयोग रखकर चलना. सूक्ष्म जंतुओंका जिस्से संहार हो जाय, तैसा खजुरीका झाडु वगैरा कचरा निकालनेके लिये कबीभी वपराशमें नहि लेना. पानीभी छानकर पीना. छाना हुवा जलभी ज्यादा नहि ढोलना. जीवदयाके खातिर रात्रिभोजन नहि करना. कंदमूलभक्षण वर्जित कर देना. जीवदयाके खातिरं जहा तहा अग्नि नहि सिलगानेका ध्यानमें रखना; क्योंकि अपने प्राणहीके समान सब जीवोंको अपने अपने प्राण वल्लभ हैं, तो तिन्हके प्रिय प्राणोंकी कीम्मत बुझकर स्वच्छंदपना छोडकर जैसे उनका बचाव हो सके तैसे कार्य करनेमें मथन करना ओर याद रखना कि सर्व अभक्ष्य-मद्य मांसादिके भक्षणसे क्षणिक रसकी लालचके लीए असंख्य जीवोंके कीमती जानकी ख्वारी होती है, तिन्हके नाहक संहारसे महान् पाप होनेसे जगत्में महा रोगादि उपद्रव उद्भवते है

तिन्हा भोग हो पडता है और उप्रांत—अंतमें नरकादि घोर दुःखके भागीदार होना पडता है.

२ निरंतर इंद्रिय वर्गका दमन करना.

दरेक इंद्रियका पतंगजतु, भौरा, मत्स्य, हाथी और हिरनकी तरांह दुरुपयोग करना छोडकर संत जनोंकी तराह इंद्रियोंका सदुपयोग करके दरेकका सार्थक्य करनेके लीए खंत रखनी चाहिये. एक एक छुट्टी की हुइ इंद्रिय तोफानी घोडेकी तरांह मालिकको विषम मार्गमें ले जाकर ख्वार करती है, तो पांचोको छुट्टी रखनेवाले दीन अनाथ जनका क्या हाल होवे? इसी लिए इंद्रियोंके तावेदार न बनकर उन्होको वश्यकर स्वकार्य साधनमें उचित रीति मुजब प्रवर्त्तावनी चाहिये. किंपाक तुल्य विषयरस समझकर तिसकी लालच छोडकर संत दर्शन, संत सेवा, संत स्तुति, सत वचन श्रवणादिसे वो इंद्रियोंका सार्थक्य करनेके लिए उद्युक्त रहकर प्रतिदिन स्वहित साधनेको तत्पर रहना उचित है.

३ सत्य वचन ही बोलना.

धर्मका रहस्यभूत ऐसा, अन्यको हितकारी तथा परिमित, जरूर जितनाही भाषण औसर उचित करना, सोही स्वपरको हित कल्याणकारी है. क्रोधादि कषायके परवश होकर वा भयसे या हांसीके खातिर अज्ञजन असत्य बोलकर आप अपराधी होते है, सो खास ख्यालमें रखकर तैसे वख्तमें हिम्मत धारण कर यह महान् दोष सेवन नहि करना. सत्यसे युधिष्ठिर, धर्मराजाकी गिनतीमे गिनाये गये, ऐसा जानकर असत्य बोलनेकी या प्रयोजन विगर वहोत बोलनेकी आदत छोडकर हितमितभाषी बन जाना, किसीको अप्रीति—खेद पैदा होय तैसी बोलनेकी आदत यत्नसे छोड देनी.

४ शील कबीभी छोडना नहि.

ब्रह्मचर्य व्रत या सदाचारके नियमे चाहे वैसे संकटमें भी लोप देनेकी इच्छा नहि करनी. सत्यवंत अपने व्रतोको प्राणोंकी समान गिनते है, और प्राणांत तलक तिन्हकी खंडना नहि करते है याने अखंडव्रती रहेते है, सोही सच्चे शूरवीर कहे जाते है.

५ कबीभी कुशील जनके संग निवास करना नहि.

तैसे हलके आचारवालेके साथ रहनेसे 'सोवते असर' यह कहेवत मुजब अपने अच्छे आचारोंको अवश्य धोखा धका पहुंचता है और लोकापवादभी आता है इसी लिये लोकापवाद भीरुजनोंको तैसे भ्रष्टाचारीयोंकी सोबत सर्वथा त्याग देनीही योग्य है. सोवत करनेकी चाहना हो तो कल्पवृक्षके समान शीतल छाउंके देनेवाले संत पुरुषकीही सोवत करो, जिस्से सब संसारका ताप टालकर तुम परम शांत रस चाखनेको भाग्यशाली बन सको.

६ गुरुवचन कदापि लोपना नहि.

एकांत हितकारी-सत्य-निर्दोष मार्गकोही सदा सेवन करनेवाले और सत्य मार्गको दिखानेवाले सद्गुरुका हित वचन कदापि लोपन करना नहि. किन्तु प्राणांत तक तद्वत् वर्तन करनेको प्रयत्न करना यही शास्त्रका साराश है. तैसे सद्गुरुकी आज्ञा पूर्वकही सव धर्म-कर्म-कृत्य सफल है. अन्यथा निष्फल कहा जाता है. इस लिये सदा सद्गुरुका आशय समझकर तद्वत् वर्तनमें उद्युक्त रहेना यही सुविनीत शिष्यका शुद्ध लक्षण है.

७ (अ) चपलता अजयणासे चलना नहि.

अजयणासे चलनेके सबबसे अनेकशः स्खलना होनेके उपरात अनेक जीवोंका उपघात, और किंचित् अपनाभी घात होनेका

संभव है. इस लिये चपलता छोडकर समतासे चलना, जिससे स्वपरकी रक्षापूर्वक आत्माका हित साध सके.

(ब) उद्भट वेष पहेरना नहि.

अति उद्भट वेष—पोषाक धारण करनेसे याने स्वच्छंदपना आदरनेसे लोगोंके भीतर हांसी होती है, इस लिये आमदनी और खर्चा देखकर—तपास कर घटित वेष धारण करना. जिस्की कम आमदानी हो उस्को जुठा दबदबेवाला पोषाक नहि रखना चाहिये. तथा धनवंत हो उस्को मलीन—फट्टे टूटे हालतवाला पोषाक रखना वोभी बेमुनासीब है.

८ वक्र विषम दृष्टिसे देखना नहि.

सरल दृष्टिसे देखना, इसमें बहोतसे फायदे समाये है. शंकाशीलता टल जाय, लोगोंमें विश्वास बैठे, लोकापवाद न आने पावे, स्वपरहित सुखसे साध सके, ऐसी समदृष्टि रखनी चाहिये. अज्ञानताके जोरसे बांका बोलकर और बाका चलकर जीव बहोत दुःखी होते है; तदपि यह अनादिकी कुचाल सुधार लेनी जीवको मुश्केल पडती है. जिस्की भाग्य दशा जाग्रत हुइ है वा जाग्रत होनेकी हो वोही सीधे रस्ते चल सकता है, ऐसा समझकर धूम्रकी मुठी भरने जैसा मिथ्या प्रयास नहि करते सीधी सडकपर चलकर स्वहित साधन निमित्त सुज्ञ मनुष्यको चूकना नहि चाहिये. ऐसी अच्छी मर्यादा समालकर चलनेसे कुधित हुवा दुर्जनभी क्या विरुद्ध बोल सके? कुच्छभी छिद्र नहि देखनेसे किंचित् एडी तेडी बातभी नहि बोल सकता है. इस लिये निरंतर समदृष्टि रखकर चलना के जिस्से किसीको टीका करनेकी जरुर न पडे.

९ अपनी जीव्हा नियममें रखनी.

जीव्हाको वश्य करनी, निकम्मा बोलना नहि, जरुरत मालुम

हो तो विचार कर हित मितही भाषण करना. अगर रसलंपट होकर जीव्हाको वश्य पड रोगादि उपाधि खडी होती है. तथा मर्यादा बहार जाना नहि. जीभके वश्य पडे हुवकी दूसरी इंद्रियें कुपित होकर तिन्होंको गुलाम बनाके बहोत दुःख देती है. इस हेतुसे सुखार्थी जन जीभके ताबे न होकर जीभकोही ताबे कर लेवे वोही सबसे बहेत्तर है.

१० बिना बिचारे कुछभी नहि करना.

सहसा—अविवेक आचरणसे बडी आपदा—विपत्ति आ पडती है. और बिचारकर विवेकसे वर्तने वालेको तो स्वयमेव संपदा आ कर अंगीकार कर लेती है. वास्ते एकाएक साहस काम कीये बिगर लंबी नजरसे बिचारके,उचित नीति आदरके वर्तना के जिस्से कबीभी खेद पश्चाताप करनेका प्रसगही आता नही. सहसा काम करने वालेको बहोत करके तैसा प्रसंग आये बिना रहेताही नहीं है.

११ उत्तम कुलाचारको कबीभी लोपन करना नहि.

उत्तम कुलाचार शिष्ट मान्य होनेसे धर्मके श्रेष्ट नियमोकी तरांह आदरने योग्य है. मद्यमासादि अभक्ष्य वर्जित करना, परनिंदा छोड देनी, हसवृत्तिसे गुणमात्र ग्रहण करना, विषयलंपटता—असंतोष तजकर सतोष वृत्ति धारण करनी, स्वार्थवृत्ति तजके निःस्वार्थपनसे परोपकार करना, यावत् मद मत्सरादिका त्याग कर मृदुतादि विवेक धारणरुप उत्तम कुलाचार कौन कुशल कुलीनको मान्य न होय ? एसी उत्तम मर्यादा सेवन करनेवालेको कुपित हुवा कलिकालभी क्या कर सकता है ?

१२ किसीको मर्मवचन कहेना नहि.

मर्म वचन सहन न होनेसे कितनेक मुग्ध लोग मानके लिये मरणके शरण होते है, इस लिये तैसा परको परितापकारी वचन

कभीभी उच्चरना नहिं. मृदुभाषा स्हामनेवालेकोभी पसंद पडती है. चाहे तैसा स्वार्थभोगसे स्हामनेवालेका हित होय वैसाही विचारकर बोलना. सज्जनकी तैसी उत्तम नीति कभीभी उलंघनी नहि. लोगोंमेंभी कहेवत है कि 'शकरसें जहांतक पित्त शमन हो जाय वहां तक चिरायता काहेकुं पिलाना चाहिये ?'

१३ किसीको कभीभी जूंठा कलंक नहि देना.

किसीको झूठा कलंक देनेरुप महान् साहससे बुराही परिणाम आनेके उग्र संभवसे सर्वथा निंद्य तथा त्याज्य है. दूसरेको दुःख देनेकी चाहना करनेवाला आपहीं दुःख मांग लेता है. क्योंकि कहेवत है कि 'खड्डा खोदे सोही पडे.' श्याने जनको इतनीभी शिखामन वस है. जैसे कुशिक्षितका अपनाही शस्त्र अपनाही प्राण लेता है तिन्हके सादृश इन्कोंभी समझकर सच्चे सुखार्थी होकर सत्य और हित मार्गपरही चलनेकी जरुरत रखनी उचित है. कहेवतभी चली आती है कि 'सांचको काहेकी आंच !'

१४ किसीकोभी आक्रोश करके कहेना नहि.

कोप करके किसीको सच्ची वातभी कहेनेसे लाभके बदलेमें गैरलाभ हाथ आता है. इस वास्ते आक्रोश करके कहेना छोडकर स्वपरको हितकारी सच्ची वात और नम्रताइसे विवेकपूर्वकही कहेनेकी आदत रखनी चाहिये. समजदार मनुष्यको लाभालाभका विचार करकेही वर्तना वटित है. यही कठिन सज्जन रीति है कि जो हर एक हितार्थियोंको अवश्य आदरणीय है.

१५ रावके उपर उपकार करना.

मेघकी तरांह सम विषम गिनना छोडकर सबपर समान हितबुद्धि रखनी. वृक्ष नीच उंच सबको शीतल छांउ देता है, गंगाजल सबका समान प्रकारसे ताप दूर करता है, चंदन सबको समान

सुगंधी देता है. वैसेही उपकारी जन जगत्मात्रका उपकार करता है. जो अपकार करनेवाले परभी उपकार करे सोही जगत्में बडा गिना जाता है.

१६ उपकारीका उपकार कभी भूलना नहि.

कृतज्ञ जन किये हुवे उपकारको कबीभी नहि भूलता है. और जो मनुष्य किये हुवे उपकारको भूल जाता है वो कृतघ्न कहा जाता है. और इससे भी जो जन उपकारीका अहित करनेको इच्छे वो तो महान् कृतघ्न जानना. माता, पिता, स्वामी और धर्मगुरुके उपकारका बदला दे सके ऐसा नहि है. तथापि कृतज्ञ मनुष्य तिन्होकी बन सके जितनी अनुकूलता संभालकर तिन्हके धर्मकार्यमें सहायभूत होनेके लिये ठीक ठीक प्रयत्न करे तो कदापि अनृणी हो सकता है. सत्य सर्वज्ञ भाषित धर्मकी प्राप्ति कराने वाले धर्मगुरुका उपकार सर्वोत्कृष्ट है. ऐसा समझकर सुविनीत शिष्य तिन्हकी पवित्र आज्ञामें वर्त्तनेके लिये पूर्ण खंत रखता है. और यह फरमानसे विरुद्ध वर्त्तन चलानेवाले गुरुद्रोही महापातकी गिने जाते है.

१७ अनाथको योग्य आश्रय देना.

अपनी आजीविकाके विषे जिन्होंको कुछभी साधन नहि है जो केवल निराधार है. ऐसे अशक्त अनाथोंको यथायोग्य आलंबन—आधार—आश्रय देना यह हर एक शक्तिवंत—धनाढ्य दानी मनुष्योंकी खास फरज है. दुःखी होते हुवे दीन जनोंका दुःख दिलमें धारण करके तिन्होको वख्तके उपर विवेकपूर्वक मदद देनेवाले समयको अनुसरके महान् पुण्य उपार्जन करते है. और तिन्हके पुण्यबलसे लक्ष्मीभी अखूट रहेती है. कुएके पानीकी तराह बडी उदारतासे व्यय की हुइ हो तोभी उदारताकी लक्ष्मी पुण्यरुपी अविच्छिन्न जल प्रवाह की मददसे फिर पूर्ण हो जाती है. तदपि

कृपणको ऐसी सुबुद्धि पूर्व अंतरायके योगसे ध्यानमें पैदाही नहि होती है, तिस्से वो बिचारा केवल लक्ष्मीका दासत्वपना करके अंतमें आर्त्तध्यानसे अशुभ कर्म उपार्जके हाथ घसता-रीते हाथसे यमके शरण होता है. वहां और उस्के बादभी पूर्व अशुभ अंतराय कर्मके योगसे वो रंक अनाथको महा दुःख भुक्तना पडता है. वहा कोई शरण—आधारभूत होता नहि है. अपनीही भूल अपनको नडती है. कृपणभी प्रत्यक्ष देख सकता है कि कोइभी एक कवडी-कौडीभी साथ वाधकर ले आया नहि और अवसान समय कौडी वांधकर साथ ले जा सकेगाभी नहि, तदपि बिचारा मम्मण शेठकी तराह महा आर्त्तध्यान धरता और धन धन करता हुवा झूर झूरके मरता है. और अतमें वो बहोतही बुरे विपाक पाता है. यह सब कृपणताके कटुफल समझकर अपनकोभी तैसेही बूरे विपाक भुक्तने न पडे, इस लिये पानी पहेले पाल बांधनेकी तरांह अव्वल-सेही चेतकर अपनी लक्ष्मीके दास नहि लेकिन स्वामी वनकर उस्का विवेकपूर्वक यथास्थानमें व्यय करके तिस्की सार्थकता करनेके लिये सद्‌गृहस्थ भाइयोंको जाग्रत होनेकी खास जरुरत है. नहि तो याद रखना कि, अपनी केवल स्वार्थ वृत्तिरुप महान् भूलके लिये अपनकोहि आगे दुःख सहन करना पडेगा, इसिलिये हृदयमें कुछभी विचार-पश्चाताप करके सच्चा परमार्थ मार्ग अंगीकार कर अपनी गंभीर भूल सुधार लेनेको चुकना सो स्याने सद्‌गृहस्थोंको योग्य नहि है. श्री सर्वज्ञ प्रभुने दर्शाया हुवा अनत स्वाधीन लाभ गुमा देके और अंतमें रीते हाथ घिसते जाकर परभवमें अपनेही किये हुवे पापाचरणके फलका स्वाद अनुभव यह कोइभी रीतिसे विचारशील सद्‌गृहस्थोंको लाजीम शोभारुप नहि है. तत्वज्ञानी पुरुषोंके यही वचनोंको अमृत बुद्धिसे अंगीकार कर विवेक पूर्वक आदरते है सो अत्र और परत्र अवश्य सुखी होते है.

१८ किसीके अगाडी दीनता दिखलानी नही.

तुच्छ स्वार्थके खातिर दूसरेके अगाडी दीनता बतानी योग्य नहि है. यदि दीनता—नम्रता करनेको चाहो तो सर्व शक्तिमान सर्वज्ञकी करो. क्योंकि वो आप पूर्ण समर्थ है और अपने आश्रितकी भीड भांग सकते है. मगर जो आपही अपूर्ण अशक्त है वो शरणागतकी किस प्रकारसे भीड भांग सके? सर्वज्ञ प्रभुके पास भी विवेकसे योग्य मंगनी करनी योग्य है. वीतराग परमात्माकी किंवा निर्ग्रंथ अणगारकी पास तुच्छ सांसारिक सुखकी प्रार्थना करनी उचित नहि है. तिन्होंके पास तो जन्म मरणके दुःख दूर करनेकीही अगर भवभवके दुःख जिस्से हट जाय ऐसी उत्तम सामग्रीकीही प्रार्थना करनी योग्य है. यद्यपि वीतराग प्रभु राग द्वेष रहित है; तथापि प्रभुकी शुद्ध भक्तिका राग चिंतामणिरत्नकी सादृश फलीभूत हूए विगर रहेता नहि. शुद्ध भक्ति यहभी एक अपूर्व वश्यार्थ प्रयोग है. भक्तिसे कठिन कर्मकाभी नाश हो जाता है, और उसीसे सर्व संपत्ति सहजहीमें आकर प्राप्त होती है. ऐसा अपूर्व लाभ छोडकर बबूलको बाथ भरने जैसी तुच्छ विषय आशंसनासे विकलपनसे तैसीही प्रार्थना प्रभुके अगाडी करनी के अन्यत्र करनी यह कोई प्रकारसे सुज्ञजनोको मुनासिबही नहि है. सर्व शक्तिवंत सर्वज्ञ प्रभुके समीप पूर्ण भक्ति रागसे विवेक पूर्वक ऐसी उत्तम प्रार्थना करो यावत् परमात्म प्रभुकी पवित्र आज्ञाको अनुसरनेके लिये ऐसा उत्तम पुरुषार्थ स्फुरायमान करो के जिस्से भवभवकी भावट टलकर परमसंपद प्राप्तिसे नित्य दिवाली होय, यावत् परमानंद प्रकटायमान होय, मतलब कि अनंत अबाधित अक्षय सहज सुख होय. सेवा करनी तो ऐसेही स्वामीकी करनी के जिस्से सेवक भी स्वामीके समानही हो जावे.

१९ किसीकी भी प्रार्थनाका भंग करना नहि.

मनुष्य जब वडी मुशीबतमें आ गया हो तबही बहोत करके गर्व टेक छोडकर दूसरे समर्थ मनुष्यको अपनी भीड भांगनेकी आशासे प्रार्थना करता है. ऐसे समझकर दानी दिलके श्याने और समर्थ मनुष्यने तिस्की प्रार्थना योग्य हो होय तो तिस्का प्राणांत तकभी भंग नहि करके स्हामने वालेका दुःख दूर करने लायक जो कुछ देना उचित हो सोभी प्रिय भाषण पूर्वक ही देना, लेकिन उच्छृंखल वृत्तिसे देना नहि. प्रिय वाक्य पूर्वक देना सोही भूषणरूप है अन्यथा दूषणरुप ही समजना. ऐसा हिताहितको विवेक पूर्वक सुज्ञ मनुष्यको वर्तन चलानाही योग्य है. नहि तो दिया हुवा दानभी व्यर्थ हो जाता है और मूर्खमें गिनती होती है.

२० दीन वचन बोलना नहि.

दीन वचनोसे मनुष्यका भार-बोज हलका हो जाता है और फिर सुज्ञजन परीक्षाभी कर लेते है कि यह मनुष्य कपटी या तो खुशामदखोर है. गुणवंतको गुणी जानकर उचित नम्रता बतानी वो दीनपनेमें गिनी जाती नहि है. गुणी पुरुषोंके स्वाभाविक ही दास बनकर रहेना यह अपनेमें स्वाभाविक गुणप्राप्तिके निमित्त होनेसे वो दूषितही नहि गिना जाता है, इसी लिये विवेक लाकर जरुरत हो तब अदीन भाषण करना कि जिस्से स्वार्थ हानि होने नहि पावे. और यह उत्तम नियम विवेकी जन जीवन पर्यंत निभावे तो अत्यंतही शोभारुप है.

२१ आत्मप्रशंसा करनी नहि.

आत्मश्लाघा याने आपवडाइ करके खुश होना यह महान्

दोष है. इस्सें महान् पुरुषोंका अपमान होता है. ऐसें महत्पुरुषोंकी आशातना-अवमानता करनेसे कर्मबंधन कर आत्मा दुःखी होता है. सज्जन पुरुषोंकी यही रीतिही नहि है. सज्जन पुरुषो तो दूसरेके परमाणु जितनेभी गुणोंको बखानते है, और अपने मेरुके समान वडे गूणोकाभी गान नहि करते. तो गुणके बिगर घमंड रखकर अपूर्ण घटकी तराह न्यूनता दिखानी सो कितनी बडी भूल और बिचारने जैसी बात है. यह बातका विचार कर पूर्ण घडेकी समान गंभीरताइ धारण करनी शीख लेनी और आप वडाइ करनी छोड देनी; क्यों कि आपवडाइ करनेमें कदम दर कदम पर निंदाका दोष लगता है. पर निंदाके पाप अति बूरे होनेसे मिथ्या आपवडाइ करनेवाला प्राणी तैसे पापकर्मोंसे अपने आत्माको मलीन कर परभवमें या क्वचित् यही भवमें बहोत दुःखी हालतमें आ जाता है.

२२ दुर्जनकी भी कभी निंदा नहि करनी.

परनिंदा करनेसे कुछभी फायदा नहि है, मगर निंदा करनेवालेको बडा गेरफायदा होता है. अपना अमूल्य वख्त गुमाकर आपही मलीन होता है. निंदा यह स्हामनेवालेको सुधारनेका मार्ग नहि है किंतु बिगाडनेका रस्ता है, ऐसा कहाजाय तो कुछ जूंठा नहि है. सज्जन जन तो तैसे निंदकोसे ज्यादा ज्यादा जाग्रत —सचेत रहकर गुण ग्रहण करते है लेकिन दुर्जन तो उलटे कुपित होकर दुर्जनताकीही वृद्धि करते है. इसि लिये दुर्जनको निंदासेभी हानिही हाथ आती है. संत—सज्जनोकी निंदासे सज्जन जनकोतो कुछभी औगुन मालुम होता नहि है; तदपि तैसे उत्तम पुरुषोंकी नाहक निंदा करनेमें आशयकी महा मलीनता होनेके लिये निकाचित् कर्मबंधकर निंदक नरकादि अधोगतिमेंही जाते है.

निंदा, चाडी, परद्रोह तथा असत्य कलंक चडानेवाले वा हिंसा, असत्य भाषण, पर द्रव्य हरण और परस्त्री गमनादि अनीति वा अनाचार करनेवाले, क्रोधांध, रागांध होनेवालेके जो जो बूरे हाल होनेका शास्त्रकारोंने वर्णन कीया है तो, तथा तिस संबंधी हित-बुद्धिसे जो कुछ कहेना वो निंदा नहि कही जाती है, मगर हित-बुद्धि बिगर द्वेषसे पिरायेकी बातें कर दिल दुभाना सो निंदा कही जाती है. और वह निंद्य है, इसलिये नाम लेकर पिरायेकी वदी करनेका मिथ्या प्रयास करना नहि. कबी निंदा करनेका दिल हो जाय तो सच्चे और अपनेही दोषोंकी निंदा करनी कि जिससे खुद कुछभी दोषमुक्त होता है. केवल दोषोंकीभी निंदा करनेसे कुछ कार्य सिद्धि नहि होती, तोभी परनिंदासे स्वनिंदा बहोतही अच्छी है.

२३ बहोत हंसना नहि.

बहोत हंसना सो भी अहितकारी है. बहोत हंसनेसे परिणाममें रोनेका प्रसंग आता है. हसनेकी बूरी आदत मनुष्यको बडी आपत्तिमें डालती है, बहोत वख्त हसनेकी आदत होनेसे मनुष्य कारणसे या बिगर कारणसे भी हंसता है और वैसा करनेसे राज्यसत्ता या अंतःपुरमें हंसनेवालेकी बडी ख्वारी होती है, इसि लिये वो बूरी आदत प्रयत्न करके छोड देनीही योग्य है. कहेवतभी है कि "हंसी विपत्तिका मुल है" हाथसे करके जीसको जोखममें डालना हो वा हाथसे करके उपाधि खडी करनी हो तो एसी कुटेव रखनी. अन्यथा तो तिसकों त्याग देनी उसमेंही सुख है. सभ्य जनकीभी यही नीति है. मुमुक्षु मोक्षार्थी सत सुसाधुओंको तो वो कुटेव सर्वथा त्याग देने लायकही है. ऐसी अच्छी नीति पालन करनेसेही प्राणी धर्मके अधिकारी बनकर सर्वज्ञ भाषित धर्मको

सम्यग् प्रमाद रहित सेवन कर सद्भाग्यके भागीदार होके अंतमें अक्षय सुख संपादन कर सकता है.

२४ वैरीका विश्वास करना नहि.

विश्वास नहि करने योग्य मनुष्यका विश्वास करनेसे बडी हानि होती है, इस लिये पहिलेसेही खबरदार रहेना कि जिससे पीछेसे पश्चाताप नहि करना पडे. काम, क्रोध, मद, मोह मत्सरादिको अंतरग शत्रु समझकर तिन्होंका कवीभी विश्वास सच्चे सुखार्थीको करना योग्य नहि है. सर्वज्ञ प्रभुने पंच प्रमादोंको प्रबल शत्रु कहे है.

जिस्के योगसे प्राणी प्रकर्षकर स्वकर्तव्यसे भ्रष्ट हो यावत् बेभान होता है सोही प्रमाद कहा जाता है. मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा यह पाच प्रमाद है. और यह पांचोंमेसे एक हो तो भी महा हानिकारी है, और जब पाचों प्रमादोंके वश जो मनुष्य पड गया हो उस्का तो कहेनाही क्या ?

मद्यपानसे लक्ष्मी, विद्या, यश, मानादिकी हानि होती है सो जगत् प्रसिद्ध है.

विषय विकारके तावे होनेवाला बडा योगीश्वर हो, ब्रह्मा हो तोभी स्त्रीका दास बन जाता है और हिम्मत हारकर एक अबला-कामी दीन दास बनता है यही विषयांधताका फल है.

कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ यह चारोंकी चंडालचो-कडी कही जाती है. तिन्हका संग करनेवाला यावत् तिस्में तन्मय होकर वा हुवा क्रोधांध यावत् लोभांध कुछभी कृत्याकृत्य हिताहित देख सकता नहि. कषाय—कलुषित मति फिर कुछ औरही नया देखाव देती है. बूढ्ढा है पर बालककी तराह और पंडित है पर मुर्खकी तरांह यावत् भूलग्रस्तकी मुवाफिक विपरीत—विरुद्ध चेष्टा करता है, जिस्से तिस्का बडा लोकापवाद प्रसरता है. कषायांध

विवेकशून्य पशुकी तरांह अपमान पाता है यावत् बूरे हालसे मृत्यु पाकर दुर्गतिकाही भागी होता है. इस लिये क्रोधादि कषायकी सेवा करनेवालेको मनुष्य नहि मगर हैवान समझना. कट्टे दुश्मनसेभी ज्यादा खाना खराबी करनेवाले कषायही है, ऐसा समझकर कुछ हृदयमें भान लाया जाय तो अच्छा. कट्टा शत्रु एकही भवमें दुःख दे सकता है, लेकिन यह कषाय शत्रु तो भवभवमें दुःख दे सकते है.

निद्रा देवीके परवश पडे हुवे प्राणीकीभी बहोत बुरी हालत होती है. जो निद्राके ताबे न होकर निद्राकोही ताबे कर लेकर विवेक धारण करते है तिन महाशयोंको लीलाल्हेर होती है.

विकथा जिस्के अंदर स्व पर हित तत्वसे संस्कारित न हुवा हो, तैसी वाहियात बातें करनी सो विकथा कही जाती है. राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, तथा भक्त- भोजन कथा यह चार विकथाओंका त्याग कर जिससें स्व पर हित अवश्य साध सके तैसी धर्म कथा केहनी योग्य है. विकथा करनेवालेका कीमती वख्त कौडीके मूल्यमें चला जाता है. और विवेकपूर्वक धर्मकथा केहनेवालेका वख्त अमूल्य गिना जाता है; तदपि विवेक विकल लोग विकथा वर्जकर उत्तम धर्म कथासे वख्तको सार्थक करनेके वास्ते खंत नहि रखते है, तो तिन्होंको आगे बहोत पस्तानाही पडेगा. और जो विवेकपूर्वक यह हितोपदेशको हृदयमें धारणकर तिस्का परमार्थ विचारके सीधे रस्ते चलेंगे तो सर्वत्र सुखी होंगे, सच्चे सुखार्थी जन यह पापी पांचों प्रमादके फंदमें न फंसकर अप्रमाद दंडसे तिन्होंका नाश करनेकेलिये उद्युक्त रेहनाही दुरुस्त धारते है. अप्रमादके समान कोइभी निष्कारण निःस्वार्थी बांधव नहि है. इस लिये पापी प्रमादोंके परका विश्वास परिहरके

उपकारी अप्रमाद बांधवमेंही सर्व विश्वास स्थापन करना कि जिस्सें सर्वत्र यश प्राप्त होय.

२५ विश्वासूको कभीभी दगा देना नहि.

विश्वास रखकर जो शरण आवे उस्को दगा देना उस्के समान कोइ एकभी ज्यादा पाप नहि है. वो गोदमें सोते हुवेका शिर काट देने जैसा जुल्म है. अच्छे अच्छे बुद्धिशाली लोकभी धर्मके लिये विश्वास करते है. तैसे धर्मार्थी जनोंको स्वार्थांध बनकर धर्मके व्हानेही ठग लेवे यह बडा अन्याय है. आपहीमें पोलपोल होवे तोभी गुणी गुरुका आडंबर रचके पापी विषयादि प्रमादके परवशपनेसें भोले लोगोंको ठग लेवे. तिन्के जैसा एकभी विश्वासघात नही है. भोले भक्त जानते है कि अपन गुरुकी भक्ति करके गुरुका शरण लेकर यह भवजल तिर जाएंगे. लेकिन पत्थरके नावकी मुवाफिक अनेक दोषोसे जो दूषित है तो भी मिथ्या महत्वको इच्छनेवाले दभी कुगुरु आपको और परिक्षा रहित अंधप्रवृत्ति करनेवाले आपके भोले आश्रित शिष्य भक्तोंको, भव समुद्रमें डूबा देते है और ऐसे स्वपरको महा दुःख उपाधिमें हाथसे डाल देते है, जो ऐसा कार्य करते है वो धर्मठग कुगुरुओंको यह संसार चक्रमें परिभ्रमण करनेमें समय महा कटु फलका स्वादानुभव लेना पडता है. इस वास्तेही श्री सर्वज्ञ देवने धर्म गुरुओंको रहेणी कहेणी बराबर रखकर निर्दंभतासे वर्त्तनेकाही फरमान कीया है. अपन प्रकटतासे देख सकते है कि कितनेक कुमतिके फंदमें फसे हुवे और विषय वासनासे पूरित हुवे हो तदपि धर्मगुरुका डोल–स्वांग धारण कर केवल अपना तुच्छ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये अनेक प्रपंच जाल गुथन कर और अनेक कुतर्क करके सत्य और हितकर सर्वज्ञके उपदेशकोभी छुपाते है इस तरहसे आप धर्मगुरुही धर्मठग बनकर भोले हिरन सादृश केवल

कर्णेद्रिय लोलुपी आंखे मीचकर हांजी हा करनेवाले अपने आश्रित भोले भक्तोंको ठगकर स्वपरको बिगाडते है. सो विवेकी हंस कैसे सहन कर सके ? दिन प्रतिदिन वो पापी चेप पसार कर दुनियाको पायमाल करते है, तिस्से वो उपेक्षा करने लायक नहि है. जगत् मात्रको हित शिक्षा देनेके लिये बंधाये हुवे दीक्षित साधुओं कि जो सर्वज्ञ प्रभुकी पवित्र आज्ञा–वचनोंको हृदयमें धारण करनेवाले और निष्कपटतासे तद्वत् वर्त्तनेको स्वशक्ति स्फुराने हारे और समस्त लोभ लालचको छोडकर जन्म मरणके दुःखसे डरकर लेश मात्रभी वीतराग वचनको छुपाते श्री सर्वज्ञकी आज्ञाको पूर्ण प्रेमसे आराधनेकी दरकार कर रहे है, वोही धर्मगुरुके नामको सत्यकर बतानेको शक्तिमान् हो सकते है. तैसे सिंह किशोरही सर्वज्ञके सत्य पुत्र है, दूसरे तो हार्थीके दांतोंकी समान दिखानेके दूसरे और खानेके–चर्वण करनेके भी दूसरे है तिनके नामको तो डेढ कोसका नमस्कार है ! भो भव्यो ! विवेक चक्षु खोलकर सुगुरु और कुगुरु–सच्चे धर्म गुरु और धर्मठगको बराबर पिच्छानके लोभी, लालचु और कपटी कुगुरुको काले सांपकी तरह सर्वथा त्याग कर. अशरण शरण धर्म-धुरंधर सिंहकिशोर समान सत्य सर्वज्ञ पुत्रोका परम भक्ति भावसे सेवन–आराधन करनेको तत्पर हो जाओ ! जिस्से सब जन्म जरा और मरणकी उपाधी अलग कर तुम अंतमें अक्षय पद प्राप्त करो ! उत्तम सारथी या उत्तम नियामक समान सद्गुरुकेही दृढ आलंबनसे अगाडीभी असंख्य प्राणि यह दुःखमय संसारका पार पाये है. अपनकोभी ऐसाही महात्माको सदा शरण हो. ऐसे परोपकारशील महात्मा कबीभी प्राणांत तकभी परवंचन करतेही नहि.

२६ कृतघ्नता किये हुवे गुणका लोप कबीभी नहि करना.

उत्तम मनुष्य औगुनके उपर गुन करते है. मध्यम मनुष्य दूसरेने गुन कीया हो तो आप अपनी वख्त हो उस वख्त बने जितनाका बदला देना धारते है; परंतु अधम मनुष्य तो कीये हुये गुनका भी लोप करते है. ऐसी अधम वृत्तिवाले अज्ञानी अविवेकी जनसे तो कुत्तेभी अच्छे गिनेजाते है, कि जो थोडाभी रोटीका टुकडा या खोराक खाया हो, तो खिलानेवालेको देखकर अपनी पुंछ हिलाकर खुश हो अपना कृतज्ञपना जाहेर करते हुवे उनके घरकी रात दिन चोकी करते है ऐसा समझकर कृतज्ञता आदर कर धर्मकी श्यायकात प्राप्त कर कुछभी धर्म आराधना करके स्व—मानवपना सार्थक करना. अन्यथा मातुश्रीकी कुक्षीको धिःकार पात्र बनाकर भूमिको केवल भारभूत होने जैसा है समझ रखना कि, कृतज्ञ विवेकी रत्नोंकीहो माता रत्नकुक्षी कहलाती है. ऐसा न्यायका रहस्य समझकर स्वपर हितकारी विवेक धारण करनेका यत्न करना.

२७ सद्गुणीको देखकर प्रसन्न होना.

वो प्रमोद या मुदिता भाव कहा जाता है. चंद्रको देखकर चकोर जैसे खुशी होता है, और मेघगर्जना सुनकर मयुर जैसे नाचता है तैसें सद्गुणीके दर्शन मात्रसे भव्य चकोरको हर्ष—प्रकर्ष होना चाहिये. दुसरेके सद्गुणोकी प्रतीति हुवे पीछेभी तिनके उपर द्वेष धरना ए दुर्गतिकाही द्वार है, वास्ते केवल दुःखदाइ द्वेषबुद्धि त्यागकर सदैव सुखदाइ गुणबुद्धि धारण कर विवेकी हंसवत् होनेके लिये सद्गुणीको देखकर परम प्रमोद धारण करना.

२८ जैसे तैसोंके साथ स्नेह करना नहि.

'मूरख साथ सनेहता, पग पग होवे कलेश.' ए उक्ति अनुसार मूर्ख कुपात्रके साथ प्रीति बांधनी नहि क्योंकि मूर्खकी प्रीतिसे अपनीभी पत जाती है. यदि स्नेह करना चाहते हो तो विवेकी हंस सदृश, संत-सुसाधु जनके साथही करो कि जिस्से तुम अनादिका अविवेक त्याग कर सुविवेक धरनेमें समर्थ हो सको. खास याद रखना चाहिये कि, संत सुसाधुके समागम समान दुसरा उत्तम आनंद नहि है. ऐसा कौन मूर्खशिरोमणि हो कि अमृतको छोडकर हालाहल विष सादृश अविवेकीकी-कुशीलकी संगति चाहे? स्थाना मनुष्य तो कबीभी न चाहेगा! जो भूंडिये जैसी वृत्तिवाला होगा वो तो जहां तहां अशुचि स्थानमेंही भटकता फिरेगा उसमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि जिस्का जैसा जाति स्वभाव होवे वैसाही कृत्य कीया करे. ऐसे नीच जनोंकी सोबतसे अच्छे सुशील मनुष्योंको भी कचित् छिंटे लगते है.

२९ पात्रपरीक्षा करनी चाहिये.

जैसे सुवर्णकी कस, छेदन, तापादिसे परीक्षा की जाती है, जैसे मोतिकी उज्वलता आदिसे परीक्षा की जाती है, तैसे उत्तम पात्रकी भी सुवृत्तिसे सद्गुणोकी परीक्षा करनी चाहिये. सुपात्रकी अंदर उत्तम वस्तु शोभायमान या कायम होती है. सुपात्रमें विवेक पूर्वक वोया हुवा उत्तम बीज शुद्ध भूमिकी तरह उत्तम फल देता है. छीपमें पडा हुवा स्वाति जलबिन्दुका सच्चा मोति पकता है, और सांपके मुखमें पडा हुवा वोहि (स्वाति) जलबिंदु झहेररूप होता है. वास्ते पात्र परीक्षा कर दान, मान, विद्या, विनय और अधिकार वगैरा व्यवहार करना योग्य है. सुपात्रमें सब सफल होता है, और कुपात्रमें नफेके वदले टोटा-अनर्थ पैदा होता है. इस लिये पात्रा पात्रका

विवेक बुद्धिशालीको अवश्य करना कि जिस्से स्वपरको अत्र समाधि पूर्वक धर्माराधनसे परत्र—परलोकमें भी सुखसंपात्ति होती है, सोही बुद्धि प्राप्तिका शुभ फल है.

३० अकार्य कभीभी करना नहि.

प्राणांततक भी नहीं करने योग्य निंद्य कार्य सज्जन जन करतेही नही है. जो लोग प्रमाद वश होकर (परवशतासे) लोग विरुद्ध वा धर्म विरुद्ध अति निंद्यकर्म करे उन्होको सज्जनोकी पंक्तिसे बहार ही गिनने चाहिये. गुण दोष, लाभालाभ, कृत्या कृत्य, उचितानुचित, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय वगैरा उचित विवेकविकल मनुष्यको पशुवत् समझना और उचित विवक पूर्वक सदैव शुभकार्योंके सेवनमें उद्यमशील मनुष्यको, एक अमूल्य हीरेके समानही जानना. ऐसे जनोका जन्मभी सार्थक है.

३१ लोकापवाद प्रवर्तन हो वैसा नहि वर्त्तना.

जिस कार्यसे लोगोंमें लघुता हो वैसा कार्य बिना सोचे—विचारे (अघटित कार्य) करना नहि जिस्से धर्मको लाछन लगे—धर्मकी हीलना—निंदा हो शासनको लघुता हो तैसा कार्य भवभीरु जनोको प्राणांत तकभी नहि करना चाहिये पूर्व महान् पुरुषोंके सद्वर्त्तनकी तर्फ लक्ष रखकर जिस प्रकारसे अपनी या दूसरेकी—यावत् जिनशासनकी उन्नति हो उस प्रकारसे विवेकसे वर्त्तना. ‘ लोग विरुद्ध चाओ ’ यह सूत्रवाक्य कदापि भूल नहि जाना. जिस्से सब सुख साधनेका शुभ मनोरथ कभीभी फलीभूत होय वैसे समालकर चलना सोही सर्वोत्तम है.

३२ साहसीकपना कभीभी त्याग देना नहि.

आपत्तिके समय धैर्य, संपत्तिके समय क्षमा, सभाको अंदर सत्य वार्ता निर्भय होकर कहनी, शरणागतका सब प्रकारसे शक्ति मुजब

संरक्षण करना और स्वार्थभोग चाहे इतना नुकसान हो जाता हो तथापि अदल इन्साफ देना. इत्यादि सद्गुण सत्ववंत सज्जनोंमें स्वाभाविकही होते है. और ऐसे ही उत्तम जन धर्मके सत्य–सच्चे अधिकारी है. तैसे विवेकी हंसही सब मलीनता रहित निर्मल पक्ष भजकर धर्म मार्ग दीपानेके वास्ते समर्थ होते है. वैसे सत्य पुरुषों-कोही अनंतानंत धन्यवाद हैं. जो सच्चा पुरुषार्थ स्फुरायके अपना पुरुष नाम सार्थक करते है, तिनकीही उज्वल कीर्ति होती है, या निर्मल यशभी तिनकाही दिगंतमें फैलता है. जो महाशय अचल होकर ऐसी उत्तम मर्यादा सदैव पालते है वो प्रसन्नतासे पवित्र नीतिको अनुसरके अत्र अक्षय कीर्ति स्थापित कर. परत्र अवश्य सद्गति गामी होते है. तैसे साहसीक शिरोमणिकाही जन्म सार्थक है. तैसा उत्तम सात्विक साहसीक सिवा स्व जन्म निष्फल है. सच्चे सर्वज्ञ पुत्र उत्तम प्रकारकी शुद्ध साहसीक वृत्तिसहितही होते है. वो लख्खो आश्रितोके आधाररुप है. तिनको सिह किशोरकी तरह साहसीकता धारण करनीही घटित है. तिनकी आबादीके उपर लख्खो मनुष्योके भविष्यका आधार है. समझकर सुखसे निर्वहन हो सके तैसी महाव्रत आचरनेरुप–महा प्रतिज्ञा करके तिनका अखंड निर्वाह करना वोही उत्तम साहसीकता है. वोही महान् प्रतिज्ञाका स्वच्छंद आचरणोसे भंग करनेके समान एकभी दुसरी कायरता है ही नहि. यह दुःख-दावानलसे तैसे प्रतिज्ञाभ्रष्टकी मुक्ति हो सकती नहि, ऐसा समझकर–'तेल पात्रधार' या राधावेध साधनेवालाकी' तरह अप्रमत्त होकर सर्वज्ञ प्ररुपित तत्वरहस्य प्राप्त करके अंगीकार की हुइ महा प्रतिज्ञाको अखंड पालन करे, वो पूर्ण प्रतिज्ञावंत होके अपना और दुसरेका निस्तार करनेमें समर्थ होता है. वोही सच्चे साहसीक गिनाये जाते है. वास्ते स्व परको डुबानेवाली कायरता

छोडकर हरएक मुमुक्षुको उत्तम साहसीकता धारण करनी ही श्रेष्ठ है. ऐसा करनेसे सब मलीनता दूर होकर स्व पर हितद्वारा शासनोन्नति होने पावे. अहो ! कब प्राणी कायरता छोडकर उत्तम साहसीकता आदरेंगे और उस द्वारा स्व परकी उन्नति साधकर कब परमानंद पद प्राप्त करेंगे ! ! तथास्तु.

३३ आपत्ति वख्तभी हिम्मत रखकर रहना.

कष्टके समयभी नाहिम्मत होना नहि. जो महाशय धैर्य धारण करके संकटके सामने अड जाते है अर्थात् वो वख्त प्राप्त होनेपरभी उत्तम मर्यादा उल्लंघते नहि; मगर उलटे उत्तम नीतिके धोरणको अवलंबन करके रहेते है, तिन्हको आपत्तिभी संपत्तिरूप होती है. शत्रुभी वश होता है. वो धर्मराजा की मुवाफिक अक्षय कीर्ति स्थापन करके श्रेष्ठ गति साधन करते है; परंतु जो मनुष्य वैसे वख्तमें हिम्मत हारकर अपनी मर्यादा उल्लंघन करके अकार्य सेवनकर मलीनताका पोषन करता है, वो इस जगतमेंभी निंदापात्र हो पापसें लिप्त हो परत्रभी अति दुःखपात्र होता है.

३४ प्राणांत तकभी सन्मार्गका त्याग करना नहि.

ज्यों ज्यों विवेकी सज्जनोको कष्ट पडता है त्यों त्यों सुवर्ण, चंदन और उस (गन्ने) की तरह उत्तम वर्ण, उत्तम सुगंधि और उत्तम रस अर्पण करते है; परंतु उन्होको प्रकृति विकृति होकर लोकापवादके पात्र नहि होती है. ऐसी कठीन करणी करके उत्तम यश उपार्जन कर वो अंतमें सद्गतिगामी होते है.

३५ वैभव क्षय होजानेपरभी यथोचित दान करना.

चंचल लक्ष्मी अपनी आदत सार्थक करनेको कदाचित् सटक जाय तोभी दानव्यसनी जन थोडेमेंसे थोडा देनेका शुभ अभ्यास

छोड देवे नहीं, तैसे शुभ अभ्यासके योगसे कचित महान लाभ संपादन होता है. यावत् लक्ष्मी तिनके पुन्यसे खींचाइ हुइ स्वयमेव आ मिळती है; परंतु खड्गकी धारापर चलने जैसा यह कठीन व्रत साहसीक पुरुषही सेवन कर सकता है.

३६ अत्यंत राग स्नेह करना नहि.

स्वार्थनिष्ठ संबंधी जनके साथ राग करनाही मुनासिब नहि है. जिस्के संयोगसें राग धारण कर सुख मानता है तिस्केही वियोगसें दुःखभी आपही पाता है. इतनाही नहि लेकीन संबंधी जनकी स्वार्थनिष्ठता समझ जानेपरभी दुःख होता है. वास्ते ज्ञानी अनुभवी पुरुषोंके प्रामाणिक लेखोंमें प्रतीति रखकर वा साक्षात् अनुभव—परीक्षा करके तैसा स्वार्थनिष्ठ जगतमें रागही करना लायक नहि है. तिसमेंभी बहोत मर्यादा बहारका राग—स्नेह करना सो तो प्रकट अविवेकही है. क्योंकि ऐसा करनेसे अंधकी माफिक कुछ गुण दोष देखकर निश्चय नहि कर सकता है. यु करतेभी राग करनेकी चाहना हो तो संत सुसाधुजनोके साथही राग करो कि जिस्से कुत्सित राग विषका नाश कर आत्माकों निर्विषता प्राप्त हो. अन्यथा राग—रंगसे अपना स्फटिक समान निर्मळ स्वभाव छोडकर परवस्तुमें बंधन-कर जीव अत्र परत्र दुःखकाही भोक्ता होता है. रागकी तरह द्वेष भी दुःखदाइ ही है.

३७ वल्लभजनपरभी बार बार गुस्सा नहि करना.

क्रोधसे प्रीतिकी हानि होती है, क्रोधसे वल्लभजन भी अप्रिय हो पडता है, क्रोध वशवर्त्ती जीव कृत्याकृत्यका विवेक भूलकर अकृत्य करनेको प्रवर्त्तता है, वास्ते सुखार्थिजनोंने कषायवश होकर असभ्यता आदरके कभीभी उचित नीतिका उल्लंघन कर स्व परको दुःखसागरमें डुबाना नहि.

३८ क्लेश बढाना नहि.

कलह वो केवल दुःखकाही मूल है. जिस मकानमें हमेशां कलह होता है तिस मकानमेंसे लक्ष्मीभी पलायमान हो जाती है; वास्ते बन आवे तहांतक तो क्लेश होने देनाही नहि, युं करते परभी यदि क्लेश हो गया तो उनको बढने न देते खतम–शमन कर देना. छोटा बडेके पास क्षमा मागे ऐसी नीति है; मगर कभी छोटा अपना गुमान छोडकर बडेके अगाडी क्षमा न मंगे तो बडा आप चला जाकर छोटेको खमावे जिस्से छोटेको शरमींदा होकर अवश्य खमना और खमानाही पडे. क्लेशको बंध करनेके लिये 'क्षमापना' खमतखामनेरुप जिनशासनकी नीति अत्युत्तम है. जो महाशय वो माफिक वर्त्तन रखता है तिनको यहां और दूसरे लोकमेंभी सुखकी प्राप्ति होती है. और जो इस्से विरुद्ध वर्त्तन चला रहे है तिनको सब लोकमे दुःखही है.

३९ कुसंग नहि करना.

'जैसा सग हो वैसाही रंग लगता है.' इस न्यायसें नीचकी सोबत या बूरी आदतवाले लोगोकी सोबत करनेसें हीनपन आता है. और उत्तमकी सोबतसे उत्तमता प्राप्त होती है. क्या देवनदी गंगाका शुद्ध मीठा पानीभी खारे समुद्रमें मिलजानेसे खारा नहि होता है? अवश्य होता है! तैसेही अन्य अपवित्र स्थलसे आया हुवा पानीं गंगाका पवित्र जलमें मिलनेसे क्या गंगाजळके माहात्म्यको प्राप्त नहि करता है? अलबत्त, वो गटरका जल हो तो भी गंगा समागमसे गंगाजलही हो जाता है! ऐसा संगति महात्म्य समझकर स्याने मनुष्यको सर्वथा कुसंग छोड देकर हर हमेशां सुसंगतिही करनी योग्य है; क्योंकि 'हानि कुसंग सुसंगति लाहु' कुसंगतिमें हानी और सुसंगतिमें लाभ ही मिलता है!'

४० बालकसेभी हित वचन अंगीकार करना.

रत्नादि सार वस्तुओकी तरह हितवचन चाहे वहासे अंगीकार करना यही विवेकवंतका लक्षण है. ज्ञानी पुरुष गुणोकीही मुख्यता मानते है. अवस्थासे लघु होने परभी सद्गुण गरीष्ठको गुरु मानते है, और वयोवृद्धको गुणरिक्त होनेसें बालकवत् मानते—गिनते है. ऐसा समझकर विवेकी सज्जन गुणमात्र ग्रहण करनेको सदैव अभिमुख रहेते है.

४१ अन्यायसे निवर्त्तन होना.

समबुद्धि धारण कर राग रोष छोडकर सर्वत्र निष्पक्षपाततासे वर्त्तना यही सद्बुद्धि प्राप्त होनेका उत्तम फल है, ऐसा समझकर सत्यपक्ष स्वीकारना सोही परमार्थ है. ऐसा वर्त्ताव चलानेमेंही तत्वसे स्वपरहित रहा है. लोकापवादकाभी परिहार और शासनोन्नति इसी प्रकारसे हासिल की जाती है. स्वल्पमें निडरतासे सच्ची हिम्मत पूर्वक न्याय मार्ग अंगीकार किये विगर जीवकी कबीभी मुक्तता होतीही नहि. ऐसा समझकर श्याने जनको सर्वथा न्यायकाही शरण लेना उचित है. नाकमें दम आ जाने तकभी अनीतिका मार्ग स्वीकारना अयोग्य है.

४२ वैभवके वख्त खुमारी नहि रखनी.

पूर्व पुण्य योगसें संपत्ति प्राप्त हुइ हो, तो संपत्तिके वख्त अहंकारी न होते नम्र होना सोही अधिक शोभारुप है. क्या आम्रादि वृक्ष भी फल प्राप्तिके वख्त विशेष नम्रता सेवन नहि करते है? वेशक नम्र होते है! वास्ते संपत्तिके वख्त नम्र होनाही योग्य है. नही कि स्वच्छंदी बनकर मदमें खीचाकर तुंग मिजाजी होना. संपत्तिके समय मदांध होना यह बडा विपत्तिकाही चिन्ह है!

४३ निर्धनताके वख्त खेदभी न करना.

पूर्वकृत कर्मानुसार प्राणी मात्रको सुख दुःख होय तैसे सम विषम संयोग मिल जाय तो भी तैसे समयमें कर्मका स्वरुप सोचकर हर्ष उन्माद या दीनता न करते समभावसेंही रहेकर स्यानासुज्ञ जनोंने शुभ विचार वृत्ति पोषण कर समर्थ धर्मनीतिका प्रीतिसे वा हिम्मतसे सेवन करना योग्य है. पहिले अशुभ कर्म करनेके वख्त प्राणी पीछे मुंह फिराकर देखते नहि है, जिस्के पारिणामसे अनंत दुःख वेदना सहन करते हुवे वो त्रास पाते है. अशुभ—निंद्यकर्म करके अपने हाथोंसे मंगा लिये हुवे दुःख उदय आनेसे दीनता करनी सो केवल कायरता ही कही जाति है. दुःख पसंद पडता न हो तो दुःखदायक निंद्यकृत्योंसे विचार कर पश्चाताप कर उनसे अलग हो जाना, जिस्से तैसे दुःख विपाक भोगने पडेही नहि; परंतु पूर्वके कीये हुवे दुष्कृत्योंके योगसे पडा हुवा दुःख सहन करते दीन हो खेद विषाद धरना वा विकल हो अविवेकतासे दूसरे दुष्कृत्य करना सो तो प्रकट दुःखका मार्ग है.

४४ सम्भावसे रहना.

जो महाशय सुख, दुःख, मान, अपमान, निंदा, स्तुति, सधनता, निर्धनता, राजा, रंक, कंचन, पथ्थर, तृण और मणि वा नारी और नागनको अगाडी कहे हुवे सद्विचार मुजब वर्तन रखकर समान गिनते है और उसमे मोह प्राप्त नही होता है. यावत् तिनको केवल कर्मविकाररुप निमित्तभूत गिनकर मनमें विषमता न ल्याते हर्ष विषाद रहित सम बुद्धिसेंही देखते है, तैसे सद्विचारवंत विवेकवंत—सद्गुण शिरोमणी जन समसुख अवगाह कर धर्म आराधनसे अवश्य स्वकार्य सिद्ध करते है, परंतु जो अज्ञानता के

जोरसे—विवेक विकल मनसे विषम वर्त्तन करते है हर्ष खेद धरके आप मतसे उलटे चलते है सो तो क्रोड उपायसे भी आत्मकार्य साध नही सकते है.

४५ सेवकके गुण समक्ष कहेना.

सच्चे सेवककी प्रत्यक्ष प्रशंसा करनेसे कुछ हानि नही किन्तु लाभही है. उत्साहकी वृद्धिके साथ वो चुस्त स्वामि भक्त हो जाता है, और तैसे नहि करनेसे कदाचित् तिसकी श्रद्धा मंद होनेसे सेवा विमुखभी हो जाता है.

४६ पुत्रकी प्रत्यक्ष प्रशंसा नही करना.

पुत्र या शिष्य चाहे वैसा सद्गुणी हो, तदपि तिसकी समक्ष प्रशंसा नहि करनी सोही उत्तम नीति है. तिनमें विनयादि उत्तम गुण वढानेका वो रस्ता है. बाल्यावस्थामें अच्छे संस्कार प्राप्त हो ऐसी फिकर रखनी वे माता पिता और गुरुकी फर्ज है. मगर गुण प्राप्त हुवे विना मिथ्या प्रशंसासे अभिमानमें आ जानेसे कदाचित् तिनका जन्म विगडता है. ऐसा समझकर तिनकी परिपक्व स्थिति होजाने तक विचार विवेकसे वर्त्तना, जिस्से तैसा सद्विवेक शीखकर पुत्र, पुत्री, शिष्य वा शिष्या अपना जन्म सुखपूर्वक सुधार सकता है. पुत्रादि समक्ष माता पितादिकोभी अपशब्दादि अविवेक यत्नसे त्याग देना.

४७ स्त्री की तो प्रत्यक्ष वा परोक्ष भी प्रशंसा करनीही नहि.

स्त्रीका स्वभाव तुच्छ होनेसे अपूर्णता बताये बिगर नहि रहेती, वास्ते चाहे वैसी गुणवंती स्त्री हो तोभी मनमेंही समझ रहेना. स्त्रीकोभी पति तर्फ विनीत शिष्यकी माफिक विशेष नम्र होनेकी

आवश्यकता है. अपना पतिव्रत तबही यथाविधि सभाला जाता है. पतिकोभी स्त्रीकी तर्फ उचित मृदुता अवश्य रखनी चाहिये. ऐसे एक दूसरेकी अनुकूलतासे गृहयंत्रके साथ धर्मयंत्रभी अच्छी तरह चल सकता है. तिस विगर दोनु यंत्र वार वार बिगडे या रुक-जाते है अपशब्दादि अपमान त्यागकर स्त्रीका अपनी तरह श्रेय चाह-कर वर्तना. स्वदारा संतोषी पतिकी तरह समझदार स्त्रीकोभी अपना पतिव्रत अवश्य पालन करना. जैसे स्वश्रेयपूर्वक स्व संततिभी सुधारने पावे तैसे स्त्री भर्तार दोनुने संप संतोष पूर्वक सद्वर्तन सेवनमें सदैव तत्पर रहेना चाहिये. जैसे आगेके वख्तमें अपना पवित्र शीलभू-षणसे भूषित वहोतसी सती शिरोमणीयोने अपना नाम अपने अद्भुत चरित्रसे प्रसिद्ध कीया है, तैसे अबीभी सूविवेकी भाइ और भगिनीये पावन शील रत्न धारनकर सुशीलता योगसे भाग्य-शाली होनाही योग्य है.

४८ प्रिय वचन बोलना.

दुसरे मनुष्यको प्रिय लागे ऐसा सत्य और हितकर वचन बोलना. प्रसगोपात विचारके कहा हुवा हितमित वचन सामने वालेको प्रिय हो पडता है. विना विचारा, औसर विगरका, कर्णकटुक भाषण कभी सच्चा हो तोभी अप्रिय होता है, और मीठा, गर्व रहित, विवेकपूर्वक विचारके समयोचित बोलाहुवा वचन वहोत प्रिय और उपयोगी हो पडता है. मगर उस्से विपरीत बोलना अहितकारी होता है. जो लोकप्रिय होनेको चाहते हो तो उक्त विवेक संभालके धर्मको बाध न आवे तैसा निपुण भाषण करना शीखो. तैसा समयोचित विनय वचन वशीकरण समान समझना. कहाभी है कि ‘ एक बोलवो न शीख्यो सब शीख्यो गयो धूरमें ! ’

४९ विनय सेवन करना चाहिये.

नम्रता, कोमलता, मृदुता वगैरे पर्यायवाची शब्द है सो सब विनयकेही है. विनय सब गुणोका वश्यार्थ प्रयोग है. विनयसे शत्रु भी वश हो जाता है विवेकसे गुणिजनोका कीया हुवा विनय श्रेष्ठ फल देता है. और विनय बिगरकी विद्याभी फलीभूत नहि होती है.

५० दान देना.

लक्ष्मीवंत होकर सुपात्रादिको विवेकसे दान देना सोही लक्ष्मीवंतकी शोभा वा सार्थकता है. विवेकपूर्वक दान देनेवालेकी लक्ष्मीका व्यय कीये हुवेभी कुवेके पानीकी तरह निरंतर पुण्यरुप आमदनीसे चढती होती जाती है. विवेक रहित पनेसे व्यसनादिमें उडादेने वालेकी लक्ष्मीका तत्वसे वृद्धि विनाही तुरत अंत आ जाता है. सूम-कंजुसकी लक्ष्मी कोइ भाग्यवान् नर ही भुक्ता है व्यय करके लाभ प्राप्त करता है; परतु ममण शेठकी तरह तिनसे एक दमडीभी शुभ मार्गमें खर्ची नहि जाती और न वो बिचारा तिसको उपभोगमेंभी ले सकता; पूर्वजन्मने धर्मकार्यकी अंदर गडबड डालनेका यह फल समझकर दानांतराय नहि करना.

५१ दूसरेके गुणको ग्रहण करना.

आप सद्गुणालंकृत हो तदपि संत साधु जन दूसरेका सद्गुण देखकर मनमें प्रमुदित होते है. तोभी सज्जनोकी अंदरके सद्गुणोको देखकर असहनताके लिये दुर्जन उलटे दिलमें दुःख पाते है—दिलगीर होते है और अंतमें दुधकी अदर जंतु ढुंढने मुजब तैसे सद्गुणशाली सज्जनोंमेंभी मिथ्या दोषारोपण करते है और झुंटे दूषण लगाकर महा मलीन अध्यवसायसे बावले कुत्तेकी तरह बुरे हालसे मृत्यू पाकर दुर्गतिमें जाते है. अमृतकी अंदर विष बुद्धि जैसे सद-

गुणोंमें औगुनपनका मिथ्या आरोप करनाभी हितकारी नहि है ऐसा समझकर सुज्ञ जनको गुणही ग्रहण करनेकी और सदगुणकी प्रशंसा करनेकी अवश्य आदत रखनी.

५२ औसरपर बोलना.

उचित औसरकी प्राप्ति विगर बोलनाही नहि. उचित औसर प्राप्त हो तोभी प्रसंग–मोका समालकर प्रसंगानुयायी थोडा और मीठा भाषण करना. विन औसर हदसे ज्यादा बोलनेसे लोकप्रिय कार्य नहि हो सकता. मगर उलटा कार्य विगडता है. ऐसा समझकर हरहमेशा सच्चा हितकारी और थोडा–मतलब जितनाही विवेकसे भाषण करनेकी दरकार करना. प्रसंगके सिवा बोलनेवाला बकवादी, दिवाने मनुष्यमें गिनाया जाता है, यह खूब यादमे रखना !

५३ खल दुर्जनकोंभी जनसमाजकी अंदर योग्य सन्मान देना.

सिरो लिखित नीति वाक्य सज्जनोको अत्युपयोगी है. उक्त नीतिके उल्लंघनसे क्वचित् विशेष हानि होती है. दौर्जन्य दोषके प्रकोपसे खलजन स्हामनेवालेको संतापित करनेमें बाकी नहि रखता है.

५४ स्व परहित विशेषतासे जानना.

हिताहित, कृत्याकृत्य वा बलाबलका विवेकपूर्वक स्वशक्ति देश–काल मानादि लक्षमे रखकर उचित प्रवृत्ति करनेवालेको हित अन्यथा अहित होनेका संभव है, वास्ते सहसा–बिना शोचे काम नहि करनेकी आदत रख कदम दर कदम विवकसे वर्त्तनेकी जरुरत है. सद्विवेक-धारी (परीक्षापुर्वक प्रवृत्ति करनेवाले) का सकलार्थ सिद्ध होता है.

५५ मंत्र तंत्र नहि करना.

कामन, टोना, वशीकरणादि करना कराना ए सुकुलीन जनका

सूषण नहि है. वास्ते बने जहांतक तिस वातसे दूर रहेना. और परका मंत्रभेद करना नहि--कीसीका भेद कीसीको कहेना नहि. और गुप्त बात जहा चलती हो वहा खडा रहेना नहि.

५६ दुसरे पीरायेके घर अकेला नहि जाना.

यह शिष्ट नीति अनुसरनेमें अनेक फायदे है. इससे शीलव्रतका संरक्षण होता है, सिरपर झुठा कलंक नहि चडता है; यावत् मर्यादाशील गिनाकर लोगोंमें अच्छा विश्वासपात्र होता है.

५७ कीइ हुइ प्रतीज्ञा पालन करनी.

अव्वल तो प्रतिज्ञा करनेकी वख्तही पूर्ण विचार कर अपनेसे अव्वलसे आखिरतक निभाव हो सके वैसीही योग्य (बन सके वैसी) प्रतिज्ञा करनी चाहिये. और कभी उत्तम जनने प्रतिज्ञा करली तो योग्य प्रतिज्ञाका प्रयत्नपूर्वक पालन करना.— नाकमें दम आ जानेतकभी खंडित नहि करनी. विचार करके समजपूर्वक की हुइ लायक प्रतिज्ञा सोही सत्य और शुभ प्रतिज्ञा गिनी जाति है. तैसी सत्य और शुभ प्रतिज्ञासे भ्रष्ट हुए मनुष्य अपनी प्रतिष्टाको खोकर अपवादके पात्र होता है. अविवेक न होने पावे ऐसी हरदम फिकर जरुर रखनी योग्य है. योग्य विचारपूर्वक की हुइ प्रतिज्ञा प्राणकी तरह पालनी ये हरेक विचारशील सुमनुष्यकी फर्ज है. सच्चे सत्ववत पुरुष तो स्वप्रतिज्ञाको प्राणसेभी ज्यादा प्रिय गिनकर पूर्ण उत्साहसे पालन करते है. फक्त निर्बल मनके कायर डरपोक मनुष्यही प्रतिज्ञा खोकर पत गुमाते है.

५८ दोस्तदारसे छुपी वात न रखनी.

जिस मित्रके साथ कायम दोस्ती रखनेकी चाहना हो तो तिनसे कुच्छभी पटंतर— भेद जुदाइ नहि रखनी. खाना और

खोलना, मनकी बाते पूछनी और कहनी, और अच्छी वस्तु जरूरत हो तो देनी और लेनी ये छः मित्रताके लक्षण है.

५९ किसीकाभी अपमान नहि करना.

मान मनुष्यको बहोतही प्यारा लगता है. मानभंग---अपमानसे मनुष्यको मरणके समान दुःख होता है. यह वार्त्ता बहोत करके हरएक जनको अनुभव सिद्ध हो चूकी होगी. कीसीकाभी अपमान न करते तिनका मीठे वचनादिसे सन्मान करनेसे अपनेको और दुसरेको लाभ होनेका समव है. गुन्हागार मनुष्यकी भी अपभ्रछना करने करते तो मीठे मधुर वचनसे यदि तिनको तिनके दोषका स्वरुप पहिले अच्छे प्रकारसे समझाया जाय तो बहोत करके पुनः अपराध गुन्हा करना छोड देता है. मृदुता यह ऐसी तो अजब चीज है कि तिनसे वज्र जैसा मान अहंकारभी पिगल जाता है. यह प्रभाव विनय गुणका है, वास्ते दूसरे निकमें लाखो उपाय छोडकर यह अजब गुणकाही घटित उपयोग करना दुरुस्त है. ऐसा करनेसे अपना कार्य बहोत स्हेलाइसे पार हो सकता है.

६० अपने गुणोंकाभी गर्व नहि करना.

उत्तम जन गर्व नहि करते है सो ऐसा समझकर नहि करते है कि गर्व करनेसे गुणकी हानि होती है. संपूर्ण गुणवंत, ज्ञानी, ध्यानी वा मौनी समुद्रकी तरह गंभीरतावत होनेसे गर्व नहि करते है. फक्त अपूर्ण जन होते है सोही अपनी अपूर्णता जाहीर करते है. अपनी वडाइ करनेसे परनिंदाका प्रसंग सहजहीमें आ जाता है. परनिंदाके वडे पापसे गर्व गुमान करनेवालेका आत्मा लिप्त होकर मलीन होता है. जिस्से मिले हुवे गुणोंकीभी हानि होती है, तो नये गुणोंकी प्राप्तिके लिये तो कहनाही क्या ? (जहां गाठकी मुंडी भी गुम जाती है तो नया लाभ होनेकी आशाही कहासे होय !)

ऐसा समझकर सुज्ञ जन अपने मुखसे अपनी वडाइ वा दूसरेकी लधुता करतेही नहि.

६१ मनमेंभी हर्ष नहि ल्याना.

' बहु रत्ना वसुंधरा ' पृथिवीमें बहोतसे रत्न पडे है, ऐसा समझकर आपभी शिष्ट नीति विचारके आप तैसी उत्तम पक्तिके अधिकारी होनेके लिये प्रयत्न करना. जहांतक संपूर्णता आ जावे वहांतक सन्नीतिका दृढालंबन कीये करना दुरस्त है. यदि किंचितभी मंद पडकर मनको छुट्टी दी तो फिर खराबी तैसीही होती है. अल्पगुण प्राप्तिमेंही मनको दिमागदार बनानेसे गुणकी वृद्धि नहि होती है. बहोतही गुणोकी प्राप्ति होनेपरभी जो महाशय गर्व रहित प्रसन्न चित्तसे अपना कर्त्तव्य कीया करते है वो अंतमें अवश्य अनंत गुण गणालंकृत होकर मोक्षसंपदा प्राप्त करते है.

६२ पहिले सुगम, सरल कार्य शुरु करना.

एकदम आकाशको बगलगिरी करने जैसा न करते अपनी गुंजाश- ताकात याद कर धीरे धीरे कार्य लाइनपर ल्याना, सोही स्थानपनका काम है. एकदम बिगर सोचे सिरपर बडा काम उठा लेकर फिर छोड देनेका वख्त आ जाय और उलटा छछोरवापन—बेवकूफी सरदारी लेनी पडे उससे तो समतासे काम लेना सोही सबसे बेहतर है.

६३ पीछे बडा कार्य करना.

कार्यका स्वरुप समझकर समतासे वो शुरु किये बाद चित्त उत्साहादि शुभ सामग्री योगसे युक्त कार्यकी सिद्धिके लिये पुख्त प्रयत्न करना. ऐसी शुभ नीतिसे कार्य करनेमें अध्यवसायकी विशुद्धिसे उत्तम लाभ प्राप्त होता है.

६४ (परंतु) उत्कर्ष नहि करना.

शुभ कार्य समतासे शुरु करके तिनकी निर्विघ्नतासे समाप्ति

होने बादभी अभिमान या बडाई जैसा कुच्छभी करना नहि. मनमें ऐसी श्रद्धा–समझ ल्याके कि कोइभी कार्य काल, स्वभाव, नियति पूर्व कर्म और पुरुषार्थ ये पांचो कारण प्राप्त हुवे विगर होताही नहि, तो वो पांचो कारण मिलनेसे कार्य हुवा उसमें गर्व काहेका करना चाहिये ? क्यों कि कार्य तो उन कारणोने कीया है. वास्ते गर्व छोड कार्य सिद्ध होनेसे श्रद्धा–दृढतादि विवेकसे नम्रताही धारण करनी दुरस्त है. वैसे सुनम्र विवेकी जन जगत्के अंदर अनेक उपयोगी शुभ कार्य कर सकते है.

६५ परमात्माका ध्यान करना.

बाह्यात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ऐसे आत्माके तीन प्रकार है. शरीर कुटुंबादि बाह्य वस्तुओमें व्याकुलतावंत हो रहा हुवा बाह्य-आत्मा कहा जाता है. अंतरके भीतर विवेक जागृत होनेसे जिस्को गुण–दोष, कृत्याकृत्य, लाभालाभका भान–शुद्धि हुइ हो, स्व परकी समझ पड गइ हो, ज्ञानादि गुणमय आत्मा सोही मैं हुं और ज्ञानादि उत्तम गुण संपात्तिही मेरे सिवाय शरीर, कुटुंब, धन, धान्यादि सब पुद्गलिक वस्तुओ है ऐसा समझनेमें आया हो वो अंतरात्मा कह जाता है. और जिसने संपूर्ण विवेकसे मोहादि कुल अंतरंग शत्रुओंका सर्वथा उच्छेद करके विमल केवल ज्ञानादि अनंत आत्मसंपत्ति हाथ की हो सो परमात्मा कहाजाता है. बहिरात्मा, परमात्माका ध्यान करनेको नालायक है और अंतरात्मा लायक है. अंतरात्मा, परमात्माके पुष्टालंबनसे दृढ श्रद्धा–विवेक प्राप्तकर आपही परमात्मपद प्राप्त करता है. वास्ते मोह माया छोडकर सुविवेकसे अंतरात्मापन आदरो. आत्मार्थी जनोंने परमात्माका ध्यानका अधिकार–योग्यता प्राप्त कर निश्चय चित्तसे परमात्माका पद प्राप्त करनेको प्रयत्न–सेवन करना योग्य है. जन्म, जरा और मृत्युरुप

अनंत दुःख–उपाधिमुक्त सर्वज्ञ परमात्मा होवे है. तिनका तन्मय ध्यान योगसे कीट भ्रमर न्यायसे अंतरात्मा परमात्मपद पाता है. अनंत ज्ञानादि अखंड सहज समाधि पाकर परमानंद सुखमग्न हो रहता है. तैसे परमात्माको अक्षय सुखार्थी आत्मार्थी जनोंको हमेशा शरण हो ! तैसे परमात्माकी भक्तिरूप कल्पवल्ली भव्य प्राणियोंके भव दुःख दूर कर मनेच्छा पूर्ण करो! यावत् भव्य चकोर शुक्ल ध्यान पाकर भवभवकी भ्रमणा भांगकर संपूर्ण निरुपाधी मोक्षसुख स्वाधीन कर अक्षय समाधिमें लीन हो ! !

६६ दुसरेको अपने आत्माके समान जानना.

समस्त जीवोंमें जीवत्व समान है, ऐसा समझकर सबको अपने जैसा गिनना. द्वैतभाव छोडकर समता सेवन कर किसी जीवको दुःख न हो वैसे यतनासे वर्त्तन चलाना. चींटीसे हाथी–सब जीवित सुख चाहता है. राजा, रंक, सुखी, दुःखी, रोगी, निरोगी, पंडित मूर्ख सब निर्विशेष–समान रीतसे सुखके अर्थी हैं. प्रमाद प्रवर्त्तन या स्वच्छंद वर्त्तनसे कोइ जीवको सुखमें अंतराय करनेसे वो प्रमादी या स्वच्छंदी प्राणी बाधक कर्म बांधता है. जिसका कटुक फल तिनको अशुभ कर्मके उदय समय अवश्य सहन करना पडता है, वास्ते शास्त्रकार कहते हैं कि:

“ बंध समय चित्त चेतिये शो उदये संताप ”

इत्यादि बोध वचनोंको लक्षमें रखकर सुखार्थी जनोंने सर्वत्र समता रखकर रहेना योग्य है. मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थ-भावकी प्राप्तिभी ऐसेही हो सकती है. जहांतक ए मैत्री वगैरा भावना चतुष्टयका प्रादुर्भाव–उदय हुवा नहि वहांतक शिवसंपदा वहोतही दूर समझनी.

६७ राग द्वेष करना नहि.

काम, स्नेह, अभिष्वंग वगैरा रागके पर्याय शब्द है, और द्वेष, मत्सर, ईर्ष्या, असूया निन्दादि रोषके पर्याय है. स्फटिक रत्न समान निर्मल आत्मसत्ताको राग द्वेषादि दोष महान उपाधिरुप होनेसे विवेकवंत जनोने यत्नसे परिहरने योग्य है. जहांतक महा उपाधिरुप ए रागद्वेषादि दोष दूर होवे नहि वहांतक कबीभी आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रकट हो सकता नहि, वो रागादि कलंक सर्वथा टल—हट गया कि तुरतही आत्मा परमात्मपद पाता है. वास्ते परमात्मपदके कामीजनोने शत्रुभूत राग द्वेषादि कलंक सर्वथा दूर करनेको दृढ प्रयत्न करना जरुरका है. यतः

" राग द्वेष परिणाम युत, मन हि अनंत संसार ॥ तेहिज रागादिक रहित, जानो परमपद सार ॥ " (समाधि शतक.)

तथा ए कर्मकलंक दूर करनेके वास्ते संक्षेपसे बालजीवोके हितार्थ अन्यत्र भी कहा है किः

" शुद्ध उपयोगने समता धारी, ज्ञान ध्यान मनोहारी ॥ कर्म कलंकको दूर निवारी, जीव वरे शिवनारी ॥ आप स्वभावमें रे अवधू सदा मगनमें रहेना ॥ "

इत्यादि रहस्य भूत ज्ञानके वचनोको मोक्षार्थी जीवोको परम आदर करना योग्य है, जिस्से सब संसार उपाधीसे मुक्त होकर परमपद त्वरासे प्राप्त कर सके. सर्वज्ञ भाषित सदुपदेशका येही सारतत्व है. ज्युं बने त्युं चूपसे राग द्वेष मल सर्वथा दूर कर निर्मल हो जाना. राग द्वेष मल सर्वथा दूर हो जानेसे आत्माको शुद्ध वीतराग दशा प्राप्त होती है. तैसी शुद्ध वीतराग दशा सोही परमात्मा अवस्था है. वो हरएक मोक्षार्थी सज्जनोंको राग द्वेषादि मलका सर्वथा परिहार करके—सद्विवेक बलसे प्राप्त करनी ही योग्य

है. उक्त सर्वज्ञ–उपदेश रहस्यको समझकर जो महाभाग, रुचि प्रीतिसे स्वहृदयमें धारेंगे वो सुविवेकी सज्जनकी समीपमें शिवसुख लक्ष्मी स्वेच्छासे आ क्रीडा करेगी.

श्री सर्वज्ञ प्रणीत स्याद्वादशैलीको अनुसरके पूर्वाचार्य प्रसादिकृत प्रकरणादि ग्रंथोके आधारसे आत्मार्थी भव्योके हितार्थ, जो कुच्छ स्वल्प स्वमति अनुसारसे यहां कथन करनेमें आया है, उसमें मति मंदतादि दोषोसे उत्सूत्र–विरुद्ध भाषण हुवा होवे वो सहृदय–सज्जन सुधारकर जिस प्रकारसे जयवंता जैनशासनकी शोभा बढे, जैसे अनादि अविवेक दूर हो जाय, और सद्विवेक जागृत होवे, जैसे दुरंत दुःखदायी स्वच्छंद वर्त्तन छोडकर संपूर्ण सुखदायी श्री सर्वज्ञ कथित सन्नीतिका सद्भावसे सेवन होवे, जैसे सम्यक् ज्ञान प्रकाशसे व्यवहार शुद्ध होवे जैसे लोकविरुद्ध त्यागसे शुद्ध देव, गुरु और धर्मका अच्छे प्रकारसे आराधन कर, अंतमें अक्षय सुख संप्राप्त होवे तैसे वर्त्तन रखनेकी सज्जनोको मेरी अभ्यर्थना है. नाकमें दम आ जाने तक भी प्रार्थना भंग नहि करनेकी उत्तम नीतिका अवलंबन करके सज्जन महाशय सत्यका कथन करना नहीं चुकेंगे. उत्तम हंसके समान सज्जन जन गुणमात्रकोही ग्रहण कर औगुण–दोष मात्रका त्याग करके जैसे स्व परकी तत्वसे उन्नति साध सके वैसे ध्यान देके वर्त्तनेको अवश्य विवेक धरेंगे. आशा है कि, परोपकार परायण सज्जन वर्ग सत्य नीतिकी उंडी नीव डाल उसपर अति उमदा धर्मकी इमारत बांधकर उसमें कुटुंब सहित नित्य विलास करेंगे. और सम्यग् ज्ञान, दर्शन चारित्रका यथाशक्तिसे आराधन कर अंतमें अविनाशी पद पाकर जन्म मरणादि दुःखोका सर्वथा नाश करेंगे. और सर्वज्ञ–सर्वदर्शी होकर लोकालोकको हस्तामलकवत् देखेंगे. यावत परम सिद्धिदायक परमातमपद प्राप्त कर पूर्णानंद चिद्रूप हो रहेंगे. (इत्यलम्.)

सदुपदेश सार संग्रह

१ जीवदया हरहम्मेश जयणा पालनी, किसी जीवको दुःख या पीडा हो तैसा कुच्छ भी कार्य कभीभी समझकर देखकर करना नहि और करानाभी नहि.

२ झूंठ बोलना नहि क्यों कि तिससे दूसरे सामनेवाले मनुष्यको अपने पर अविश्वास आता है; और कभी सत्यभी मारा जाता है.

३ चोरी करनी नहि चोरी करनेवाला कभी सुखी नहि होता है. चोरीसे संपादन किया हुवा धन माल घरमें रहेताही नहि, चोरका कोइ विश्वासभी नहि करता. चोर मरण आये विगरही मरता है याने फासी वगैरा बूर हालसे मरता है. चोर भटकती फिरती हरामके माल खानेवाली भैंसकी तरह असंतोषी होता है.

४ व्यभीचारभी करना नहि परस्त्रीगमन और वेश्यागमन भाइयोंको, और परपुरुषादि गमन बाइयोंको अवश्य त्याग देनेही लायक है. ऐसा कर्म लोक विरुद्ध होनेसे निंदापात्र होता है, कुलको कलंक लगता है और नरकादि दुर्गति प्राप्त होती है.

५ अत्यंत तृष्णा रखनी नहि अति लोभ दुःखकाही मूल है और लोभ अनेक पापकर्म करानेके लिये जीवको ललचाके दुर्गतिमें डालता है.

६ क्रोध नहि करना क्रोध अग्निके समान संतापकारी है. प्रथम आपहीको संतापता है. और जो सामनेवाला मनुष्य समझदार क्षमावंत नहि हो तो तिसकोंभी संताप कराता है क्रोधको टाल देनेका उत्तम उपाय क्षमा, समता वा धैर्य है.

७ अभिमान करना नहि जो सख्स अहंकार करते है सो

मानहीन होजाकर नीचा दरज्जा पाते है, और जो नम्र रहते हैं सो उंचे दरज्जेके अधिकारी होते है. कहा है कि जहां लघुता वहां प्रभुता विद्यमान रहती है. कुल, जाति, बल, तप, विद्या लाभ और ठकुराइ आदिका गर्व कभीभी नहि करना.

८ माया कुटिलता करनी नहि—— छल, प्रपंच, दगा, दंभ, वक्रता, कपट करके अपनी मगरूरतासे उलटे रास्तेपर चलनेवाला कभी सुख पाताही नहि कहानीभी है कि 'दगा किसीका सगा नहि.' कपटि जनकी धर्मक्रिया निष्फल होती है. कपटी मनुष्य मुंहका मीठा मगर दिलका झूंठा होता है.

९ लोभको त्याग देना लोभी मनुष्य कृत्याकृत्य, हिताहित भक्ष्याभक्ष्य करनेमें विवेकहीन होकर अग्निके समान सर्वभक्षक बनता है.

१० राग द्वेष नहि करना राग द्वेष दोषसे आत्मा मलीन होता है. राग द्वेष दोनुं साथही रहेते है तिन्होको जीतनेके लिये वीतराग प्रभुजीकी सहायता मदद मांगनेकी आवश्यकता है, क्यों कि वह प्रभु सर्वथा रागद्वेषरहित अनंत शक्तिवंत और अनंत गुणवंत है.

११ क्लेश करना नहि कलह—क्लेश दुःखकाही मूल है. जहा हरहमेशा क्लेश हुआ करता है वहां लक्ष्मी पलायन कर (भाग) जाती है. इस लिये क्लेशसे दूर रहेना.

१२ झूंठा कलंक नहि देना—— किसीको झूंठा कलंक लगा देना उस्के समान दूसरा ज्यादा पाप नहि है. झूंठे कलंकसे जीवको मरण सादृश दुःख होता है जैसा दुःख दूसरे जीवको देनेमें तत्पर होता है तैसा बल्कि तिससेंभी सोगुना, लाख क्रोड गुना कटुक दुःख देनेवालेको पर भवमें भुक्तना पडता है.

१३ चुगली करनी नहि—— चुगलखोर मनुष्य दुर्जन गिना जाता है. चुगली करनेकी बुरी आदतसे कचित् अच्छे भले मनुष्यभी संकटमें फस जाते है.

१४ वैभवके वख्त छक जाना नहि सुख प्राप्त होतेही विचार कर लेना के सुखका साधन धर्मही है, तो तिस्कीही सेवना करनी योग्य है. यह समझकर धर्म सेवन करना.

१५ दुःखके वख्त दीनता करनी नहि दुःख आनेसे बिचार लेना के दुःखका निदान पाप—दुष्कृत्यही है, तो तिस वख्त पापसे वहोतही डरते रहेना फायदेमंद है.

१६ पराइ निंदा नहि करनी— निंदाखोर मनुष्य धर्मी भाई बाइयोंकीभी निंदा करता है, तिस्से तिस निंदकका आत्मा अत्यंत मलीन होता है. निंदा करनेवाला मृत्युके शरण हो करके नारकी होता है. महान पातकी होनेके लिये निंदकको ज्ञानी जनभी उनको कर्मचंडाल कहकर बुलाते है.

१७ कहेनी और रहेनी समान रखनी कहेना कुछ और करना कुछ, यह तो जाहीर ठगाइ और लघुताइ गिनी जाती है. सज्जन जो बोलता है सोही पालता है. और प्रतिज्ञा पल सके तितनाही बोलते है. सज्जन पुरुष सदाचारवंत होते है. लोक विरुद्ध वर्तन तो सर्वथा तज देते है.

१८ झुंटा खोटेका पक्ष नहि खीचना सत्यासत्यकी परीक्षा करके निश्चय कर सच्चेकाही हम्मेशा पक्ष ग्रहण करना. परीक्षा किये बिगर कदाग्रहके लिये खोटेका पक्ष—तरफदारी खींचना यह आत्मार्थीका लक्षण नहि है.

१९ शुद्ध देवकीही सेवना करनी राग द्वेष और मोहादि महा दोषस सर्वथा वर्जित निर्दोष, निष्कलंक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी,

वीतराग, परमात्मा (जिसका नाम चाहे सो हो, मगर गुणमें सर्वोत्कृष्ट हो सो), तिन्होंकाही अनन्य भावसे शरण ग्रहण करना.

२० शुद्ध गुरुकोही सच्चे दिलसे सेवा करनी आप निर्दोष, वीतराग शासनको सेवन वाले और अन्य आत्मार्थी सज्जनोंको ऐसाही निर्दोष मार्ग बतानेवाले क्षमा, मृदुता, सरलता अने निर्लोभतादिक श्रेष्ठ गुणोंको भजनेवाले भिक्षु, साधु, निर्ग्रंथ, अणगार मुमुक्षु—श्रमणादिक सार्थक नामसे पिछाने जाते मुनिगणही शुद्ध गुरुबुद्धिसे सेवन करने योग्य है.

२१ शुद्ध सर्वज्ञ कथित धर्मकोही समझकर सेवा करनी दुर्गतिसे बचाकर सद्गति प्राप्त करानेवाला, स्याद्वाद अनेकांत मार्ग मध्य शुद्ध श्रद्धा रखकर सेवा करनी दोष मात्रको दलन करनेमें समर्थ महाव्रत सेवन करनेरुप प्रथम मुनीमार्ग. उसके अभावसे अणुव्रत सेवन करनेरुप दुसरा श्रावक मार्ग, और महाव्रतादि सम्यक् पालनमें असमर्थ होते भी दृढ शासनरागसे शुद्ध मार्ग सेवन करनेवालोंका बहोत मान्यपूर्वक सत्यतत्व कथन होनेसे तीसरा संविज्ञ पक्षीय मार्गको आत्मार्थी सज्जनोंने दृढ आलंबन योगसे जलदी भव समुद्रसे पार करनेवाला समझकर सेवन करनाही योग्य है.

२२ शुद्ध देवगुरु अने धर्मकी सेवा करने लायक होना चाहिये—(तैसी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये.) अयोग्य—योगता रहित मलीन आत्मा शुद्ध देव, गुरु धर्मकी सेवाका अधिकारी नहि है.

२३ आत्माकी मलीनता दुर करनेको मथन करना अपने मन वचन और शरीरको नियममें रखनेसे आत्मा निर्मळ हो सकता है.

२४ क्षूद्रता त्याग देनी नीच मलीन बुद्धि त्याग कर

सुबुद्धि धारण कर कर अंतःकरण निर्मळ करना. गंभीर दिल रखना, तुच्छता करनी नहि, दुसरेके छिद्र तर्फ दुर्लक्ष देकर अपना और दुसरेका हित किस प्रकारसे होय सोही दाने दिलसे विचारना.

२५ मात्र न्यायसेही धन उपार्जन करके आजीविका चला लेनी योग्य है. संसार व्यवहार वा धर्मव्यवहार अच्छी तरांहसें चलानेके लिये न्याय नीतिकोही अगामी रखके योग्य व्यापारद्वारा द्रव्य उपार्जन करना मुनासिब है. न्यायद्रव्यसे मति निर्मळ रहेती है. कहाहै कि.–'जेसा आहार वैसाही उदगार.' अन्यायका परिणाम विपरीत आता है.

२६ स्वभाव शीतळ रखना कडक प्रकृति वहोत दफे नुकसान करती है, ठंडी प्रकृतिवाळा सुखसे स्वकार्य सिद्ध कर सकता है, और अपने शीतल स्वभाव बळसे समस्त जन समुदायको अवश्य प्रिय वल्लभ लगता हैं.

२७ लोक विरुद्ध कार्य कभी करनाही नहि मास भक्षण, मादिरापान, शीकार, जुगार, चोरी, और व्यभिचार यह सब महा निंद्यकर्म उभय लोक याने यह जन्म और परजन्म विरुद्ध है, तिस्से करके उक्त कार्य अवश्य त्यागदेने लायकही है.

२८ क्रूरता नहि करनी- कठोर दिलसे कोइभी पापकर्म करना नहि. नहितो उस्से उभयलोक बिगडते है और निंदापात्र होता है.

२९ परभवका डर रखना बुरे कार्य करनेसे प्राणीको परभवके अंदर नरक तीर्यचके अनंत दुःख भुक्तने पडते है. ऐसा समझकर तैसे नीच अवतार धारण करने न पडे ऐसी पेहेलेसेही खबरदारी रखनी और अपना वर्तन सुधारकर चलना.

३० ठगबाजी करनी नहि ठग लोगोको दुसरे मनुष्योकी खुसामत करते हुएभी हरहम्मेशां अपना कपट छुपानेके लिये

दुसरोका भय रखना पडता है. ठगलोग दुसरेको ठगनेकी इंतेजारीका उपयोग करनेमें आपही वहोत ठगाते है. विचारे ठगलोग समझते नहि है कि हमलोग धर्मके अन अधिकारी होनेसे हमारी धर्मकरणी कष्ट काया कलेशरुप निकम्मी हो जाती है.

३१ वडिलकी मर्यादा उल्लंघन करनी नहि वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और गुणवृद्धकी योग्य दाक्षिण्यता संभालनेसे अपना हित जरुर होता है.

३२ उत्तम कुल मर्यादा त्याग देनी नहि नम्रता रखनी, कोइभी एव लगानी नहि. सुज्ञतासे वा स्यानेपनसे बोलना चालना इत्यादि उत्तम नीति रीति आदरनेके लिये प्रयत्न कियेही करना. मतलबमें इतनाही कहेना काफी है कि कोइभी प्रशंसनीय प्रकारसे कुलकी शोभामें वृद्धि हो वैसेही कार्य करना.

३३ दयार्द्र स्वभाव धारण करना समस्त प्राणियोको समान गिनकर किसीका जीव दुःख पावे वैसा करना नहि सब जीवोंको मित्रके सादृश मान लेनाही लाजीम है.

३४ पक्षापक्षी करना नहि सत्यकाही आदर करना. सत्य बावतमें भेद भाव धरना नहि और शत्रु मित्र समान गिन लेकर मध्यस्थ भावमें स्थित होना.

३५ गुणिजनको देखकर प्रसन्न होना यदि आपको गुण संग्रहनेकी जरूरत हो तो गुणिजनोको देखकर प्रसन्न रहो. क्यों कि गुण गुणियोके पासही निवास करते है. गुणिलोगोका अनादर करनेसे गुण दूर भाग जाते है और उनोका योग्य आदर करनेसे गुण नजदीक आते है.

३६ मोजमें आ जाय जैसा वाक्योच्चार करना नहि जब जरुरत हो तब जरुरत जितनाही ज्ञानीके वचनानुसार बोलनेसे

स्व परका हित होता है अन्यथा उन्मत्त भाषणसे तो अवश्य अपना और दूसरेका अहितही होता है.

३७ समस्त अपने कुटुंबको धर्मचुस्त बनाना (धर्मचुस्त करनेमें योग्य यत्न–प्रयत्न उपयोगमें लेना.) - उपकारी कुटुंबियोंके उपकारका दूसरी रीतिसे बदला दे सकते नहि, मगर धर्मके संस्कारी करनेसे उन्हके उपकारका बदला अच्छी तरांहसे पूर्ण कर सकते है, और धर्मके संस्कारी होनेसे वोह सब प्रकारसे अनुकूलवर्ती होते है.

३८ बिना विचार किये कोइभी कार्य करना नहि साहस कार्य करनेसे कोइ वख्त जीव जोखममें झुक जाकर महान् शोकातुर होता है, इस लिये तिस्का अंतका परिणाम विचार करकेही घटित कार्य करनेमें तत्पर रहेना.

३९ विशेष ज्ञान संग्रह करना सत्यतत्व जाननेके लिये जिज्ञासा हो तो अंध क्रियाका त्याग करके हरएक व्यवहार–क्रियाका परमार्थ समझकर सत्य–निष्कपट क्रिया करनेके लिये पूर्ण आदर करना.

४० हम्मेशां शिष्टाचार सेवन करना महान् पुरुषोंने सेवन किया हुवा मार्ग सर्व मान्य होनेसे अवश्य हितकारी होता है, इस सबबसे स्वकपोलकल्पित मार्गको छोडकर सन्मार्ग सेवन करना. क्यों कि **‘ महाजनो येन गतः सपन्थाः ’**

४१ विनयवृत्ति–नम्रता धारण करनी––सद्गुणी वा सुशील सज्जनोंका उचित विनय करना. सद्गुणी जनोंका कभीभी अनादर करना नहि. क्यों कि विनय सोही समस्त गुणोंका वश्यार्थ प्रयोग है. धर्मका मूलभी विनय है. विनयसेही विद्या फलीभूत होती है. और विनयसेही अनुक्रम करके सर्व संपत्ति संपादन होती है.

४२ उपकारी जनका उपकार भूल नहि जाना माता, पिता और मालिकका उपकार अतुल माना जाता है. वह सबसे धर्मगुरुका उपकार बेहद है. तिन्हका उपकारका बदला पूर्ण करनेका सच्चा उपाय यह है कि तिन्हको जरुरतके समय धर्ममें मदद देनी ऐसा समझकर वैसी उत्तम तक–मौका सुज्ञजनको खो देना नहि चाहीये. क्यों कि, गया वख्त फेर हाथ आता नहि.

४३ यथाशक्ति जरुर पर दुःखभंजन करना दीन, दुःखी, अनाथ जनको यथा उचित सहाय देकर तिन्होंको आश्वासन देना. और कुछ न बन सके तो योग्य वचनसेभी तिन्होंको संतोष देना. तिन्होंका जीवात्मा कोइ प्रकारसे दुःखी हो तैसा कुछ करना या शब्दोच्चारभी करना नहि. और तिन्होंको टिगमगाकर देना नही. जलदी अपनी शक्ति मुजब दे देना.

४४ कार्यदक्ष होना––अभ्यास बलसे कोइभी कार्यमें फिकरमंद नहि होके तिस्कों पार पहोंचानेमें पूर्ण हिम्मतवंत होना. आरंभ किये हुवे कार्यमें कितनेभी विघ्न आ जाय तोभी हाथ धरे हुवे कार्यमें निडरतापूर्वक अडग रहकर कार्य सिद्ध करना.

४५ मिथ्यात्व सेवन करना नहि––राग द्वेषसे कलंकित हुवे कुदेवोंका, तत्वसे अज्ञ मिथ्या कदाग्रही कुगुरुका और हिंसादि दूषणोसे सहित कुधर्मका सर्वथा त्याग करना. अज्ञानमय होळी प्रमुख मिथ्या पर्वोंकाभी अवश्य परिहार करना. मिथ्या देव देवीकी मानत नहि करनी. शासन भक्त सुरवरोंकी सच्चे दिलसे आस्था रखनी. क्यों कि, आपत्तिके वख्त भक्तजनोंको शासनदेवही सहायभूत होते है.

४६ शंका कंखा धारण करनी नहि · सर्वज्ञ वीतराग परमात्माके प्रमाणभूत वचमनमें कदापि शंका करनी नहि. क्योंकि,

तिन्हकों सर्वथा दोष रहित होनेसे झूट बोलनेका कुछ प्रयोजन नहि है, इस्सें निःशंकपणे श्री जैनशासनकी शुद्ध दिलसे सेवा करनी. प्राणांत होनेसेभी पाखंडी लोगोंने फेलाइ हुइ जाळमें फसाना नहि.

४७ धर्म संबंधी फलका संदेह करना नहि जो साक्षात धर्म कल्पवृक्षका सेवन करके तीर्थंकर गणधर प्रमुख असंख्य मनुष्योंने साक्षात सुखका अनुभव कीया है उस पवित्र धर्मके अमोघ फलका संदेह निर्बल मनवाले मनुष्य सिवाय दुसरा कौन करेगा? अपितु अन्य कोइभी नहि करेगा.

४८ मिथ्यात्वका परिचय त्याग देना— 'सोबते असर' यह दृष्टांतसे स्वगुण की हानी और कदाग्रही विपरीत दृष्टी जनके ज्यादा संगसे आत्माका सहज शत्रुभूत दुर्गुणकी वृद्धि होती है.

४९ मिथ्यात्वीकी स्तुति भी नहि करनी—इस्की स्तुति करनेसेभी मिथ्यात्वकीही वृद्धि होती है.

५० तत्वग्राही होना— मध्यस्थ वृत्तिसे सत्य गवेषक होकर सुवर्णकी तराह परीक्षा पूर्वक शुद्ध तत्व अंगीकार करना.

५१ जोहेरीकी मुवाफिक सुपरीक्षक होना शुद्ध तत्व स्वीकारते पहेले जोहेरीकी तराह अपनी चातुर्यताका जहां तक बने वहां तक पूर्ण उपयोग करना.

५२ तत्वपर पूर्ण श्रध्दा रखनी श्री सर्वज्ञ प्रभुके फरमाए हुए तत्व वचनोंपर पूर्ण प्रतीति रखनी, किंचितभी चलित नहि होना.

५३ नीच आचारवालेकी सोबत सर्वथा त्याग देनी नीच संगतिसे हीनपदही प्राप्त होता है. प्रत्यक्ष देखो कि गंगानदीका पवित्र जलभी क्षार समुद्रमें मिल जानेसे क्षाररुप हो जाता है. ऐसा समझकर सत्संग सेवन करनाही मुनासिब है.

५४ धर्म (शास्त्र) श्रवण करनेमें तीव्र रुची करनी जैसे कोइ सुखी और चालाक युवान बहोत उत्साहसे दैवी गायन नादको अमृत समान जानकर श्रवण करे तैसे बल्कि तिससेभी अधिक उत्कंठासे शास्त्र श्रवण करना योग्य है. शास्त्रवाणी श्रवण करनेमें वडी सकर—द्राक्षसेभी ज्यादा मिष्टता पैदा होती है.

५५ धर्मसाधन करनेपर बहोत रुची रखनी जैसे कोइ ब्राह्मण जंगल उल्लंघन करके थकित बनकर बेहोश हो गया हो और उसको बहोतही भूक लगी हो, उस वख्त कोइ सख्स उसे घेबरका भोजन दे दे तो बहोतही रुचिदायक हो. तैसे मोक्षार्थीको धर्मसाधन करना रुचिकर होना चाहिये.

५६ देवगुरुका वैयावच्च करनेमें कचाश नहि रखनी चाहिये— जैसे विद्यासाधक प्रमाद रहित विद्या साधनमें तत्पर रहते है, तैसे शुद्ध देव गुरुका आराधन करनेमें कुशलता रखनी आत्मार्थीओंको योग्य है.

५७ विनयका स्वरुप समझकर अरिहंतादिकका निम्न लिखे मुजब आदर रखना १ भक्ति (बाह्य उपचार), २ हृदयप्रेम—बहु मान, ३ सद्‌गुणोंकी स्तुति. ४ अवगुन—दोषदृष्टिका त्याग करना और ५ बनते तक आशातनाओंसे दूर रहेना.

५८ शुध्द समकित पालना (मन, वचन और कायासे) श्री जिन और जैनमार्ग बिगर समस्त असार है, ऐसा निश्चय करनेसे मनसे, श्री जिनभक्तिसे जो बन सके सो करनेवाला दुनियांमें दुसरा कौन समर्थ है, ऐसा कहेनेसे वचनसे, और अडगपनसे श्री जिनके सिवा अन्य कुदेवको कबिभी प्रणाम नहि करनेसे कायासे, ऐसे त्रिकरण शुद्धिसे सम्यकत्व पालना.

५९ जैनशासनकी प्रभावना करनेमें तत्पर रहेना पवित्र

जैन सिद्धांतका पूर्ण अभ्यास करनेसे भव्य जनोको धर्मोपदेश देनेसे, दुर्वादीका गर्व मर्दनेसे, निमित्त ज्ञानसे, तपोबलसे, विद्यामंत्रसे, अंजन योगसे और काव्य बलसे राजा वगेरांहको प्रतिबोधनेमें, जैन-शासनकी विजयपताका फडफडानेमें घटित वीर्य स्फुरायमान करना.

६० **जिस प्रकारसे समकित शुद्ध निर्मळ हो तिस प्रका-रका त्वरासे उपयोग करना**—शुद्ध देव गुरुको यथाविधि वंदन करके, यथाशक्ति व्रत पच्चख्खाण करना. तथा उत्तम तीर्थ सेवा, देवगुरुकी भक्ति प्रमुख सुकृत ऐसी तराहसे करना कि जिससे अन्य दर्शनी जनोभी वह वह सुकृत करणीकी अवश्य अनुमोदना करके बोध बीज बोकर भवांतरमें सुधर्म फल प्राप्त करनेको समर्थ होके यावत् मोक्षाधिकारी होवे.

६१ **अपराधी परभी क्षमा करनी**—अपराधिकाभी अहित नहि करना, और बनसके वहांतक अपराधीकोभी सुधारनेकी-केळवणी देनेकी इच्छा रखनी.

६२ **मोक्ष सुखकीही अभिलाषा रखनी** जन्म मरणादि समस्त सांसारिक उपाधि रहित अक्षय सुख संपादन करनेके लिये अहर्निश यत्न करना. देव मनुष्यादिकके सुखोंकोभी दुःखरूपही जानना.

६३ **संसारके दुःखसे त्रासवंत होना**—यह संसारको नरक वा काराग्रह समान जानकर तिनसे मुक्त होनेका यत्न किये करना.

६४ **पीडित जनोंको बने वहांतक सहायता देनी** द्रव्यसे दुःखी होनेवाले मनुष्योंको, तथा धर्म कार्यमें सीदाते हुवे सज्जनों-को यथायोग्य मदद देकर तिन्होंको घटित तोष देना. तिन्हकी उपेक्षा करके बेदरकार न रहेना. एकभी जीवको सत्य सर्वज्ञ धर्म प्राप्त करानेवाला महान् लाभ उपार्जन करता है.

६५ वीतरागके वचन प्रमाण करे सर्वज्ञ वीतराग परमात्माने तीनों कालके जो जो भाव कहे है वह वह भाव सर्व सत्य है, ऐसी दृढ आस्तावाला मनुष्य उत्तम लक्षणोसे लक्षित समकित रत्नको धारण कर सुखी होता है.

६६ ग्रहण किये हुवे व्रत साहसीकतासे पालन करे सत्य सत्ववंत शूरवीरोको लिये हुवे व्रत अखंडतासे पालन करनेमें तत्पर रहेना घटित है. प्राणांत समयमेंभी अंगीकार किये हुवे व्रतोंको खंडन करना मुनासिब नाहि है.

६७ अपवादके वख्त जिस प्रकारसे धर्मका संरक्षण हो तिस प्रकारसे ध्यान पूर्वक वर्तना.—— राजा, चोर दुर्भिक्षादिकके सबल कारणके वख्त जिस प्रबंधसे चित्त समाधिवंत रह सके तिस प्रबंध युक्त दीर्घदृष्टिसे स्वव्रत सन्मुख दृष्टि रखकर उचित प्रवृति करनी.

६८ हरेककार्य प्रसंगमें धर्ममर्यादा याद रखकर चलना—— जिसेसे धर्मको बाध न लगे, धर्म लघुता न पावे और स्वपर हित साधनमें खलेल न पहोचे ऐसी उचित प्रवृत्ति करनी चाहिए.

६९ आत्मा हर एक शरीरमें विद्यमान है.—— जैसे तिलमें तेल, फुलोमें खुसबु, दुग्धमें घृत, तैसे प्रत्येक शरीरमें आत्मा रहा है. सर्वथा शरीर रहित आत्मा सिद्धात्मा कहा जाता है.

७० आत्मा नित्य है—— नारकी, तिर्यच, मनुष्य और देवतारुप चारो गतिमें आत्मत्व सामान्य है.

७१ आत्मा कर्ता है—— अशुद्ध नयसे आत्मा कर्मका कर्ता है और शुद्ध नयसे स्वगुणका कर्ता है.

७२ आत्मा भोक्ता है—— अशुद्ध नयसे आत्मा कर्मका भोक्ता है और शुद्ध नयसे तो स्वगुणकाही भोक्ता है.

७३ मोक्ष है समस्त शुभाशुभ कर्मका सर्वथा क्षय होनेसे

आत्मा परमात्मा — सिद्धात्मा होकर जो लोकाग्र अजरामर, अचल, निरुपाधिक स्थानको संप्राप्त होता है सो मोक्ष कहा जाता है.

७४ **मोक्षका उपायभी है**— सम्यक् ज्ञान (तत्वज्ञान), सम्यक् दर्शन (तत्व दर्शन) और सम्यक् चारित्र (तत्व रमण) यह मोक्ष प्राप्तिके अवंध्य—अमोघ उपाय है.

७५ **सबके साथ मैत्रीभाव रखना** सर्व जीवों को मित्रही जानना, किसीके साथ शत्रुता धारण करना नहि, सबमें जीवत्व समान है, सर्व जीव जीनेकी इच्छा रखते है, सुख दुःख समय मित्रवत् समभागी होना. द्वेष इर्ष्या या स्वार्थबुद्धिसे किसीका भी कार्य बिगाडना नहि.

७६ **पापी, निर्दय, कठोर परिणामवाले प्राणीओंपरभी द्वेषभाव धरना नहि** तैसे दुर्भव्य या अभव्य जीवके साथ प्रीति वा द्वेष रखना नहि. मध्यस्थ रहकर चिंतवन करना कि वो बिचारे निबिड कर्मके वश होकर तैसा वर्तन करते है.

७७ **बुद्धिवंत होकर तत्वका विचार करना**—कि मैं ऐसी स्थितिवंत क्यों हुवा ? मेरेको कैसा सुख अभिष्ट है ? वो कैसे मिल सके ? मेरेको सुखमें अंतराय कौन करता है ? उन उन अंतरायोंको मैं किस प्रकारसे दूर कर सकुं ? वगैरा: वगैरा:

७८ **मानवदेह प्राप्त करके बन सके वैसे सुव्रत धारण करे** बोध प्राप्त कियेका यही सार है कि असार और अनित्य देहमेंसे सार व्रत धारण कर सत्य और सनातन धर्म साधना.

७९ **लक्ष्मी प्राप्त करके सुपात्र दान दे, सदुपयोग करे** लक्ष्मीका चंचल स्वभाव जानकर विवेकसे पात्र—सुपात्र दान देना, सो ऐसा समझकर देना कि '**हाथसे करेंगे सोही साथ आयगा**' '**जैसा देवेंगे तैसाही पावेंगे.**'

८० सत्य और प्रिय वचन मुंहकी शोभा है जिस करके दूसरेका हित हो वैसा मीठा—मधुर भाषण करना. कठोर भाषण कदापि नहि करना सो यह समझकर नहि करना कि—'**वचने क दरिद्रता**'

८१ जितना वन सके तितना जीवहिंसासे दूर रहेना दुःख दुर्भाग्य, बीमारी वगैरां प्रकट हिंसाके ही फल समझ सुज्ञजन प्रमादसे पिराये प्राण अपहरणरुप हिंसासे दूर रहनेके लिये वने वहांतक प्रयत्न करे.

८२ जितना बने तितना असत्यसे दूर रहेना मूकपन, बोबडापन, मुखपाकादिक रोग वेदना वगैरां प्रकट असत्य भाषणकेही फल समझकर सुज्ञजन असत्यका त्याग कर देवे.

८३ जितना वन सके तितना अदत्त—चोरीसे दूर रहेना. 'दगा किसीका सगा नहि' ऐसा समझकर तथा राजदंड, भय, निर्धनता, कृपणतादिक प्रकट चोरीके फळ जानकर समजदार लोगोंको वने वहांतक अनीतिसे दूर रहेनाही दुरस्त है.

८४ मैथुन क्रीडा पशुवृत्तिका बने वहांतक त्याग कर विरक्त दशा धारण कर लेनी. धातुक्षय, क्षयरोग, चांदी वगैरां अनेक दुःखके भोग होनेरुप प्रकट कामक्रीडाके फल समझकर तथा ज्ञानीके वचन मुजव वहुतसे जीवोंका नाश होनेका कारण जानकर सत्य सुखार्थीजन वन सके तितना मैथुन परित्याग कर संतोष धार लेवे.

८५ जितना वन सके तितना परिग्रहका प्रमाण कम कर-देना- मोहममत्वको वढानेहारां धनधान्यादिक नव प्रकारके परिग्रह वनते तक घटा देना. सूभुम, ब्रह्मदत्त प्रमुखकी परिग्रहकी वहोत ममतासे दुर्दशा हुइ बिचारकर स्याने लोग अर्थको अनर्थकारी समझकर घटित संतोष धारणकर लेवे.

८६ निर्ग्रंथ मुनि महाव्रतके अधिकारी है हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह, यह पाचोंका सर्वथा मन वचन और कायासे करना कराना और अनुमोदन आदी त्याग करके वो महाव्रतोंको शूर-वीर होकर पालन करनेवाले निर्ग्रंथ अणगारके नामसे पहेचाने जाते है.

८७ अणुव्रत धारक श्रावक कहे जाते हैं स्थूल हिंसादिकका यथाशक्ति संकल्प पूर्वक त्याग करनेवाला श्रावक कहा जाता हैं.

८८ रात्रिभोजन महान् पापका कारण है पवित्र जैनदर्श-नमें साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका मात्रको रात्रिभोजन सर्वथा निषेध है. अन्य दर्शनमेंभी रात्रिमें अन्न लेना मांस बराबर और पानी पीना रुधिर बराबर कहा है. ऐसा समझकर सुज्ञ मनु-ष्योंको रात्रिभोजन छोड देनाही लाजीम है. रात्रिभोजन करने-वालेको सांप, घूघू, छपकली प्रमुख नीच अवतार लेने पडते है. और भोजनमें क्वचित् विषजंतु आजानेसे विविध जातिके व्याधि विकार पैदा होते है.कभी मर जावे तो दुर्गतिमें जाना पडता है.

८९ दूसरभी अभक्षोंका त्याग करना दो रात्रिके बादका दही, तीन रात्रि व्यतीत हुवे बादकी छाछ, कच्चा गोरस दूध, दहीं, और छांछके साथ मुंग, उडद, अरहर, चणे, इत्यादि द्विदल खाना, कच्चा निमक, तिल, खसखस, तुच्छ फल, अनजाने फल, दिनके उदय सिवा भोजन करना, संध्याकी संधिके वख्त भोजन करना, अरल्वे फलका और बिगर धूप बताए हुवे आचार, गत दिनका पकाया हुवा भोजन, विषग्रहण. ओते, बरफ वगैरा जो जो प्रसिद्ध अभक्ष (नहि खाने लायक) है वह वह सर्व पदार्थ सर्वथा त्याग देने चाहिये. बेंगन, पिलु, वडके फल, शहद, मख्खन आदिभी सब अभक्ष समझकर वर्जित करना सो बहोतही फायदेमंद है.

९० अनंतकायका भक्षणभी त्याग देना अद्रक, मूली,

गाजर, पिंड, पिंडालु, सूरन, वगैरा जमिकंद, तथा बहोतही कोमल फल वा पत्र पत्ति, थेग. नीमगिलोय, मोथ प्रमुख, किंवा नये उगते हुवे अंकुर कुंपल वगेरामें अनंत जीवोंकी उत्पत्ति जानकर तिन्होंकी हिंसासे डरकर तिन्होंका त्याग करना.

९१ तीन गुणव्रत धारण करना उपर कहे हुवे अणुव्रतकी पुष्टिके लीये दिग् विरमणव्रत १, भोगोपभोग विरमणव्रत २, अनर्थदंड विरमणव्रत रुप तीन गुणव्रत धारण करना. पहीले गुणव्रतमें मर्यादा की हुइ भूमिके बहार जाना नहि. दूसरेमें महापाप वाले १५ कर्मादानका व्यापार बंध कर देना, तथा चौदह नियम धारण करना. और तीसरेमें दुसरेको पापोपदेश नहि देना. पापकारी उपकरण कोइभी मंगे तो नहि देना. नाटक प्रेक्षणा नही करना.

९२ चार शिक्षाव्रत सेवन करना सामायिक (संकल्प पूर्वक अमुक वख्त समताभाव सेवन करणरुप) १, देशावगासीक (दीग्विरमण व्रतका संक्षेप करण रुप) २, पौषध (आहार, शरीरसत्कार मैथुनक्रीडा तथा अन्य पाप व्यापारका सर्वथा वा अंशसे त्यागरुप) ३, अतिथि संविभाग (साधु, साध्वीको दान देकर भोजन करणरुप) ४, यह चारों शिक्षाव्रत सुश्रावक श्राविकाओने मूल गुणोंकी पुष्टि खातर अभ्यासरुपसे अवश्य सेवन करने लायक है.

९३ ग्रहण कियेहुवे व्रतोंको यथार्थ पालन करे लक्ष्मी, यौवन और जीवितको अस्थिर जानकर तिन्होंको उत्तम व्रतसे सफल करनेके लिये सज्जन जन दृढ निश्चय करे, और प्राणांत समयमी ग्रहण करे हुवे व्रत खंडित न करे.

९४ पहिले व्रतका स्वरूप जानकर अंगिकार करे व्रतका स्वरुप समझकर तिरसे यथाविधि पालन करनेसे यथार्थ फल प्राप्त कर सके.

९५ व्रतकी तुलना कर लेनी अंगीकार करने योग्य व्रतका

प्रथम अच्छी तरांहसे अभ्यास कर पिछे तिसका पच्चख्खाण करना.

९६ **अभ्यासको कुच्छ असाध्य नहि है** अभ्यासके बलसे प्राणी पूर्णताको प्राप्त कर सकता है, इस लिये अभ्यास कियेही करना.

९७ **सावधानीसे मोक्ष क्रिया साधनी** शास्त्र कथन मुजब मोक्षगमन योग्य सत्क्रिया साधते हुवे 'तेल पात्रधर' (संपूर्ण तैलका प्रात्र लेकर चलनेवाले) तथा 'राधावेध साधनेवाले' की तरांह सावध रहेना किंचित्‌भी गफलत करनी नहि. विद्या मंत्र-साधककी तरांह अप्रमत्त होकर रहेना.

९८ **सुख दुःखमें सिंह वृत्ति भजनी धारन करनी**—सुख दुःखके वख्तमें हर्ष शोककी वेदरकारी रखकर कैसे कारणोसे वह सुख दुःख पैदा हुवे है, सो तपास कर अशुभ कर्मसे डरकर चलना और वने वहातक शुभ कर्म—सुकृत समाचरना.

९९ **श्वानवृत्ति सेवन करनी नहि** जैसे कूतरा पथ्थर मारने वालेको काटना छोडकर पथ्थरको काटने दोडता है, तैसे अज्ञानी अविवेकी जनभी सुख दुःख समयमें सीधा विचार करना छोडकर उलटा विचार कर हर्ष खेद धारणकर कुत्तेकी तरांह दुःखपात्र होता है. मगर जो समजदार है वो तो उभय समयमेंभी समानभाव धारण करते है.



२॥र बोल संग्रह.

१ लोभी मनुष्य फक्त लक्ष्मी इकठ्ठी करनेमें ही तत्पर—हुंसियार रहते है, मूढ—कामी मनुष्य काम भोग सेवनमें ही तत्पर रहते हैं, तत्वज्ञानीजन काम क्रोधादि दोषका पराजय करके क्षमादि गुण धारण करनेमेंही तत्पर रहते है, और सामान्य मनुष्य तो धर्म, अर्थ, और काम यह तीनोका सेवन करनेमेंही तत्पर रहते है.

२ पंडित उन्हीकोही समझो कि, जो विरोधसे विरामकर शांत, समभाववंत हुवे होवैं; साधु उन्हीकोही जानो कि, जो समय और शास्त्रानुसार चले; शक्तिवंत उन्हीकोही समझो कि, जो प्राणांत तक भी धर्मका त्याग न करे; और मित्र उन्हीकोही जानो कि, जो विपत्तिमें भागीदार होवैं.

३ क्रोधी मनुष्य कभी सुख नहीं पाते है, अभिमानी शोकाधीन होनेसे कभी जय नहीं पाते हैं, कपटी सदा औरका दासपणाही पाते है, और महान् लोभी और मम्मण जैसे मनहूस मख्खीचूस नरकगति ही पाते है.

४ क्रोधके जैसा दूसरा कोई भवोभव नाश करनेहारा विष नहीं है; अहिंसा—जीवदयाके जैसा दूसरा जन्मजन्ममें सुख देनेवाला कोई अमृत नहीं है; अभिमानके जैसा कोई दूसरा दुष्ट शत्रु नहीं है; उद्यमके जैसा कोई दूसरा हितकारी बंधु नहीं है; माया—कपट के समान दूसरा कोई प्राणघातक भय नहीं है; सत्यके जैसा कोई दूसरा सत्य शरण नहीं है; लोभके जैसा कोई दूसरा भारी दुःख नहीं है और संतोषके जैसा कोइ दूसरा सर्वोत्तम सुख नहीं है.

५ सुविनीतको बुद्धि बहुत भजती है, क्रोधी कुशीलको अपयश बहुत भजता है, भग्न चित्तवालेको निर्धनता बहुत भजती है, और सदाचारवंत—सुशीलको लक्ष्मी सदा भजती है.

६ कृतघ्न मनुष्यको मित्र तजते हैं, जितेंद्रिय मुनिको पाप तजते है, शुष्क सरोवरको हंस तजते हैं, और धुरंधबाज—कषायवंत मनुष्यको बुद्धि तज देती है.

७ शून्य हृदयवालेको बात कहनी सो विलाप समान है, गइ गुजरीको पुनः पुनः कथन करनी सो विलाप समान है, विक्षेप चित्तवालेको कुछभी कहना सो विलाप समान है, और कुशिष्य

शिरोमणीको हितशिक्षा देनी सो भी विलाप समान है.

८ दुष्ट अकसर लोगोंको दंड देनेके वास्ते तत्पर रहते हैं, मूर्खलोग कोप करनेमें, विद्याधर मंत्र साधनेमें, और संत साधुजन तत्वग्रहण करनेमें तत्पर रहते हैं.

९ क्षमा उग्रतपका, स्थिर समाधीयोग उपशमका, ज्ञान तथा शुभ ध्यान चारित्रका, और अति नम्रतापूर्ण गुरु तर्फ वर्तन शिष्यका भूषण है.

१० ब्रह्मचारी भूषण रहित, दीक्षावंत द्रव्य रहित, राज्यमंत्री बुद्धि सहित और स्त्री लज्जा सहित शोभायमान् मालूम होते है.

११ अनवस्थित–अनियमित–अस्थिर प्राणीका आत्माही अपने आपका वैरी जैसा और जितेंद्रियका आत्माही आत्माको शरण करने योग्य समझना.

१२ धर्मकार्यके समान कोई श्रेष्ठ कार्य, जीवहिंसाके समान भारी अकार्य, प्रेम–रागके समान कोई उत्कृष्ट बंधन, और बोधी लाभ–समकित प्राप्तिके समान कोइ उत्कृष्ट लाभ नहीं है.

१३ परस्त्रीके साथ, गमारके साथ, अभिमानीके साथ और चुगलखोरके साथ कभी भी सोबत न करनी चाहिए; क्यौं कि ए हरएक महान् आपत्तिके ही कारण है.

१४ धर्मचुस्त मनुष्योंकी जरूर सोबत करनी चाहिए, तत्वके ज्ञाता पंडितजनको जरुर दिलका संशय पूंछना चाहिए, संत–सुसाधुजनोंका जरुर सत्कार करना चाहिए और ममता–लोभ–दरकार रहित साधुओंको जरुर दान देना चाहिए; क्यौं कि ये हरएक लाभकारी है.

१५ विनय विचारसे पुत्र और शिष्यको समान गिनने चाहिए, गुरुको और देवको समान गिनने चाहिए, मूर्ख और तिर्यंचको समान

गिनने चाहिए, और निर्धन तथा मृतकको समान गिनने चाहिये.

१६ तमाम हुन्नरोंसे धर्माराधनका हुन्नर, समस्त कथाओंसे मूल्यमें धर्म कथा, सब पराक्रमसे धर्म पराक्रम, और तमाम सांसारिक सुखोंसे धर्म संबंधी सुख विशेष शोभा पात्र है.

१७ जुगार खेलनेवाले जुगारीके धनका, मांस खानेकी आदत वालेकी दयाबुद्धिका, मदिरा पीनेवालेके यशका और वेश्यासंगीके कुलका नाश होता है.

१८ जीवहिंसा—शीकार करनेवालेके उत्तम दयाधर्मका, चोरीकी आदतवालेके शरीरका, और परस्त्रीगमन करनेवालेके दयाधर्म और शरीरका नाश होता है उनकी अवममें अधमगति होती है. वास्ते ए तीनों दुर्व्यसन यह लोक और परलोक इन दोनोंसे विरुद्ध होनेके लिये अवश्य छोड देनेके योग्य ही है.

१९ निर्धन अवस्थामें दान देना, अच्छे होद्देदार अफसरको क्षमा रखनी, सुखी अवस्थामें इच्छाका रोध करना, और तरुण अवस्थामें इंद्रियोंको कब्जमें रखनी—ये चारों बातें बहुत ही कठीन हैं; तथापि वो अवश्य करने योग्य होनेसे जब वैसा मोका हाथ लगे तब जरुर लक्ष देकर करनी ही चाहिए.

धर्म कल्पवृक्ष (याने) दानके चार प्रकार.

दानः—धर्म साक्षात् कल्पवृक्ष जैसा है, दान, शील, तप और भावना यह चार उनके प्रकार हैं. अभय—सुपात्र—ज्ञान दान वगेरः दानके भेद है. दानसे सौभाग्य, आरोग्य, भोग, संपत्ति तथा यश प्रतिष्ठा प्राप्त होते है. दानगुणसे दुश्मन भी तावेदार हो पाणी भरता है. यावत् दानसे शालीभद्रकी तरह उत्तम प्रकारके दैवीभोग प्राप्त करके अंतमें मोक्ष सुख प्राप्त होता है.

शीलः पशुवृत्ति छोडकर शील—सदाचारका विवेक पूर्वक

सेवन करना उनके समान एक भी उत्तम धन नहीं हैं. शील परम मंगलरूपी होनेसे दुर्भाग्यको दलन करनेवाला और उत्तम सुख देनेवाला है. शील तमाम पापका खंडन करनेवाला और पुण्य संचय करनेका उत्कृष्ट साधन है, शील ये नकली नहीं मगर असली आभरण है, और स्वर्ग तथा मोक्ष महेलपर चढनेकी श्रेष्ठ सीढी है. इस लिये हरएक मनुष्यको सुखके वास्ते शील अवश्य सेवन करने लायक है. शीलव्रतको पूर्ण प्रकारसे सेवन करनेसे अनेक सत्वोंका कल्याण हुवा है, होता है, और भविष्यमें होयगा.

तपः—कर्मको तपावे सोही तप. सर्वज्ञने उनके बारह भेद कहे है यानि छः बाह्य और छः अभ्यंतर ऐसे दो भेद सामिल होकर बारह होते है. उसकी नाम संख्या भेद नीचे मुजब है.

अनशन—उपवास करना सो (१), उनोदरी—दो चार कवल कम खाना सो (२), वृत्तिसंक्षेप—विवेक—नियम मुजब मित अन्नजल आदि लेना सो (३), रसत्याग—मद्य, मांस, शहद, मख्खन, ये चार अभक्ष्य पदार्थोंका बिलकुल त्याग के साथ दुध, दहीं, घी, तेल, गुड और पकान्न वगैर.का विवेकसे बन सके उतना त्याग करना सो (४), कायाक्लेश—आतापना लैनी, शीत सहन करनी सो (५), और संलीनता अंगोपांग संकुचित कर—एकत्रकर स्थिर आसनसे बैठना सो (६) ये छः बाह्य तप कहे जाते है. अब छः अभ्यंतर तप बतलाते है.

प्रायश्चितः—कोइ भी जातका पाप सेवन किये बाद पश्चाताप पूर्वक गुरु समक्ष उनकी शुद्धि करनेके वास्ते योग्य दंड लेना सो (१) विनय—चाहे वो सद्गुणीकी साथ नम्रता सह वर्त्तन, सद्गुण समझकर उनका योग्य सत्कार करना सो (२), वैयावच्च—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य वगैरः पूज्य वर्गकी बहुतमान पुरःसर भक्ति करनी सो (३), स्वाध्याय—वाचना, पृच्छना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा और

धर्मकथा रुप ए पांच प्रकारका है उनका उपयोग करना सो (४), ध्यान—शुभ ध्यानको चिंतन और अशुभ ध्यानका विस्मरण करना यानि मलीन विचारोंको दूरकर शुभ या शुद्ध—निर्दोष विचारोंको धारण करना, आत्म-परमात्मका एकाग्रतासे चिंतन करना, और बहिर्वृत्ति छोड अंतरवृत्ति भजनी सो (५). काउस्सग्ग-देहकी तथा उनकी साथ लगे हुवे मन और वचनकी चपलता दूर कर आत्म—परमात्म ध्यानमें ही तत्पर—लीन होना सो (६), यह छ अभ्यंतर तप हैं.

अंतर शुद्धि करनेके वास्ते अवश्य कारणभूत होनेसे वो अभ्यंतर तप कहा जाता हैं. अभ्यंतर तपकी पुष्टि होवे वैसा बाह्य तप करना ऐसा सर्वज्ञ भगवानने भव्य जीवोंके लिये कथन किया है; वास्ते वो अवश्य तप आदरने योग्य है. तपके प्रभावसे अचिंत्य शक्तियें प्रकटती है, देव भी दास होते है, असाध्य भी साध्य होता है, सभी उपद्रव शांत होते है, और सब कर्ममल दहन हो शुद्ध सुवर्णकी तरह अपना आत्मा निर्मल किया जाता है; वास्ते आत्मार्थी—मुमुक्षु वर्गको उनका सदा विवेक पूर्वक सेवन करना योग्य है. तप सच्चा वही है कि जो कर्ममलको अच्छी तरह तपाके साफ कर देवे.

भावना: धर्म कार्य करनेके भीतर अनुकूल चित्त व्यापार रूप है. वैसी अनुकूल चित्तवृत्ति रूपकी प्राप्तिके सिवाय धर्मकरणी चाहिए वैसा फल नहीं दे सक्ती है. यावत् चित्तकी प्रसन्नताके विगर की गइ या करानेमें आती हुइ करणी राज्यवेठ समान होती है. वास्ते सब जगह भाव प्राधान्य रुप है. भाव विगरका धर्मकार्यभी अलून धान्य भोजन जैसा फीका लगता है, और वो भाव सहित होवे तो सुंदर लगता है. इस लिये हरएक प्रसंगमें शुद्ध भाव अवश्य आदरने योग्य है. सर्वकथित भावना ए भव संसारका नाश करती है. मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थता रुप चार भावनायें भवभय

हरने वाली हैं. जगत्के जीव मात्रको मित्र गिननेरुप मैत्री भाव है. चंद्रको देख जैसे चकोर प्रमुदित होता है वैसे सद्गुणीको देखकर भव्य चकोर चित्तमें प्रसन्न होवै वो प्रमुदित या मुदिता भाव कहा जाता है: दुःखी जीवको देखकर आपका हृदय पिघल जाय और यथाशक्ति उसका दुःख दूर करनेके लिये प्रयत्न हो सकै सो करै उसको करुणा भाव कहा जाता है. और महापापरत प्राणीपर भी क्रोध-द्वेष न लाते मनमें कोमलता रख उदासीनता धरनेमें आवे उसको मध्यस्थ भाव कहा जाता है. ऐसी उत्तम भावना भावित अंतःकरणवाले प्राणी पवित्र धर्मके पूर्ण अधिकारी गिने जाते है. उनके दर्शनसे भी पाप नष्ट हो जाता है. वैसे शुद्ध भाव पूर्वक शुद्ध क्रिया करनेवाले महात्माओंके प्रभावसे पापी प्राणी भी अपना जाती वैर छोडकर-अपना क्रूर स्वभाव दूर कर शांत स्वभाव धारन करते है. ऐसे अपूर्व योग-प्रभाव पूर्वोक्त सद्भावनाके जोरसे प्रकटते है; वास्ते मोक्षार्थिजनोंको उपर कही गइ भावनाये धारनेके लिये अवश्य प्रयत्न करना योग्य है. सर्वज्ञ कथित तत्व रसिकको ए शुभ भावनाए सहजही प्रकट होती है.

सामान्य हितशिक्षा.

(१) जयणा-यतना, उस उस धर्म संबंधी या व्यवहार संबंधी, परलोक वास्ते या इस लोक वास्ते, परमार्थसे या स्वार्थसे जो जो व्यापार करनेमें आवें उनमें बराबर उपयोग रखना वो उसका सामान्य अर्थ है. विशेषार्थ विचारनेसे तो, आत्माका शुद्ध निर्दंभ मोक्षार्थ शांतिपूर्वक करनेमें आये हुवे मन-वचन-तन-द्वारा व्यापार विशेष मालुम होता है, इसी लिये ही ज्ञानीशेखर पुरुषोंने जयणाको धर्मकी माता कह बतलाइ है यानि आत्मधर्म-गुणोंको उत्पन्न

करनेहारी—पालन करनेवाली—वृद्धि करनेवाली—यावत् एकांत सुखकारी जयणा ही है. जयणा रहित चलनेवाले, खडे रहनेवाले, बैठनेवाले, सोनेवाले, भोजन करनेवाले या भाषण करने—बोलने-वाले उन उन चलनादिक क्रिया करनेमें त्रस या स्थावर जीवोंकी हिंसा करते है जिस्से पापकर्म बांधते है. उनका विपाक कटु होता है. वास्ते सुज्ञ विवेकी सज्जनोंको वो वो चलनादिक क्रिया करनेके वख्त ज्यौं ज्यौं विशेष जयणा समाली जाय त्यौं वर्त्तन रखना वही हितकारक है; क्यौं कि सभी जीवोंको अपने जीव समान गिनता हुवा जो किसी भी जीवको दुःख न देनेकी बुद्धिसे समस्त पापस्थान त्याग कर आत्मनिग्रह करता है वही महात्मा कर्म नहीं बांधता है. अन्यथा अपने कल्पित क्षणिक सुखकी खातिर नाहक अनेक निरप-राधि जीवोंके प्राणोंको हरण करता हुवा, अजयणासे वर्त्तन चलाता हुवा वो जीव भारीकर्मी होता है यानि बडे भारी कर्म बांधता है, कि जो कर्म उदय आनेसे बहुतही कटुरस देता है. दृष्टांतरुप कि परजीवोंके संरक्षणके वास्ते मुनिमहाराज रजोहरण ओघा, तथा सामायिक पोषधादिक व्रतोंमे श्रावक चरवला, और इन सिवायके गृहस्थ लोक कचरा कस्तर दूर करनेके वास्ते बुहारी रखते हैं; मगर वै सुकोमल होवे तब और हलके हाथोंसे उन्होंका उपयोग करनेमें आवे तब तो जीवरक्षारुप प्रमार्जना सार्थक हो जयणा पालन करनेमें मददगार होती हैं; लेकिन उस बिगर नहीं होती. आजकल अज्ञान दशासे मुग्ध जीव जमीन साफ करनेके वास्ते अच्छे सुकोमल नरमासवाले उपकरण न रखते बहुत करके खजुरी वगैरः की तीक्ष्ण बुहारीयोंका उपयोग करते हुवे मालुम होते है कि जो बिचारे एकेंद्रियसे लगाकर त्रस जीवो तकके संहार होनेके लिये भारी शस्त्र हो पडता है. अपनको एक कांटा लगनेसे दुःख होता है, तो

विचारे वे क्षुद्रजीवोंकी जान निकल जाय वैसे शस्त्र समान घातक पदार्थ वपरासमें लेनेके वास्ते हिंदु—आर्य मात्रको और विशेष करके कुल जैनोंको तो साफ मना ही है जिससे दुरस्त ही नही है. अल्प खर्च और अल्प महेनतसे सेवन करनेमें आता हुवा भारी दोष दूर हो सकै वैसा है; तथापि वे दरकारीसे उनकी उपेक्षा किये करै, ये दयालु जीवोको क्या लाजिम है ? बिलकुल नहीं ! वास्ते उमेद है कि उस संबंधमें धर्मकी कुछ भी फिक्र रखनेवाले या तरकी करने-वाले उनका तुरत विचार करके अमल करेंगे.

दुसरी भी उपर बताइ गइ चलनादिक क्रिया करनेकी जरुरत पडती है, उनमें बहुत ही उपयोग रखकर जीवोंकी विराधना न करते जयणा पालन करनी चाहिये. चलने के वख्त पूर्णपणेसे जमीनपर समतोल नजर रखकर एकाग्र चित्तसे वर्त्तन रखनेमें, और बैठने, ऊठनेमें, खडे रहने—सोनेमें, भी उसी तरह किसी जीवको तकलीफ न होने पावे वैसी सावचेती रखकर रहना चाहिए. भोजन संबंधमें तो जैनशास्त्र प्रसिद्ध बाइस अभक्ष्य और बत्तीस अनंतकाय छोड कर, और दुसरे भोज्यपदार्थेंभी जीवाकुल नही है ऐसा मालुम हुवे बाद, तथा जानकरके या अनजानते जीवोंका संहार करके बनाया गया न होय वैसेही उपयोगमें लेने चाहिए. वो भी दिनमे प्रकाशवाली जगहमें पुख्ते बरतनमें रखकर उपयोगमें लेने चाहिए कि जिस्से स्वपरकी बाधा—हरकत के विरहसे जयणा माताकी उपासना की कही जावै.

भाषण भी हितकारी और कार्य जितना—(Short and Sweet) तथा धर्मको दखल न पहुंचने पावे वैसा और जैसा जहा समय उपस्थित हो वहा वैसाही (समयोचित) बोलना. और बोलने के वख्त विरतिवंतको मुहपात्ति और गृहस्थको भी इंद्र महाराजकी

तरह धर्मकथा प्रसंग समय जरुर उत्तरासंग—वस्त्रको मुंह आगे रख-कर बोलना कि जिस्से जयणा सेवनकी मालुम होवे.

इस तरह उपर कही गइ करणिये करने के वख्त ज्यौं ज्यौं अप्रमत्ततासे वर्त्तन रख्खा जाय त्यौ त्यौ विशेषतासे आराधकपणा समझना. और उस्सें विरुद्ध वर्त्तन रख्खै तो विराधकपणा समझ लेना. पूज्य मातुश्रीकी तरह मानने लायक श्री पूज्य तीर्थकर गणधर प्रणीत पवित्र अगवाली जयणामाताका अनादर करके वर्त्तन च-लानेवाले कुपुत्रोंकी तरह इन लोकमें और परलोकमें हासी तथा दुःख के पात्र होते है. वास्ते सपूतकी तरह जयणामाताका आराधन करनेमें नही चूकना—यही तात्पर्य है.

(२) झूंठवाडा झूंठा अन्न या पानी खाने पीने या छांटनेसे अपने मुग्ध भाइ और भागिनीयें कितना बहुत अनर्थ सेवन करते है सो ध्यानमें रख्खो ! पूर्व तथा उत्तरके देशोंको छोडकर आजकाल यहां के अज्ञ जीव इन झूंठकी बाबतमें बहुत अधर्म सेवन करते है उनका नमूना देखो ? सभी कोइ कुटुंबी या ज्ञाति भाइयोंके वास्ते पानी पीने के लिये रख्खे हुवे बरतनोंमेंसे पानी निकालने भरनेके लिये एक इलायदा बरतन—लोटा अगर प्याला नहीं रखतें है; मगर जिसी बरतनसे आप मुंहको लगाकर पानी पीते है, बस वही झूंठे जलयुक्त बरतनसे पुनः उसी जल भरित बरतनकी अंदरसे पानी निकाल कर आप पीते है या दुसरोंको पिलाते हैं जिस्से शास्त्र मर्यादा मुजब उन जल भाजनमें असंख्यात लालिये समूर्छिम जीव पैदा होते है यानि वो जलभाजन (पानीका बरतन) क्षुद्र अति सुक्ष्म जीवमय हो जाता है, उन्हीको, मुंह लगाकर झुंठा बरतन पानी भरे हुवे बरतनमें डालने वाले अज्ञ पशु जैसे निर्विवेकी जीव पीते है ऐसा कहना अयोग्य नहीं होगा. झूंठा अन्न या

पानी अंतर्मुहुर्त्त उपरात अविवेक या प्रामादसे रख छोडने वाला इस तरह असंख्य जीवोंकी विराधना करने वाला होता है. ऐसा समझकर—हृदयमें ज्ञान और मगजमें भान लाकर परभवसे डरकर जिस प्रकार वै असंख्य जीवोका नाहक—मुफत संहार न होवें उस प्रकार चेतने रहना योग्य है यानि खाने पीनेकी वस्तुमें झूठा पात्र हाथ न डालना और न झूंठा बनाकर दुसरेको देना.

उसी तरह गत दिनका ठंडा भोजन पदार्थ, धूप दिखाये बिगर बनाया गया आम आदिका आचार, दो हिस्से होने वाले विदल मूंग, उडद, चणे, अरहर, मटर वगैरः के साथ कच्चा दहीं खाना अभक्ष्य भक्षणरुप होनेसे उन्होंका तद्दन त्याग करना. (वैद्यकीय नियमसेभी ए चीजे तन्दुरस्ती बिगाडने वाली ही है वास्ते छोडनेसे जरूर फायदाही होता है.) छोटे बडे जीमन—ज्ञाति, कुटुंब भोजनके वास्ते बनाइ गइ रसोइ कि जिसके बनानेके वख्त जयणा न रखनेसे बहूतसे जीवोंका सत्यानाश निकल जाता है. और झूंठा अन्न जल ढोलनेसेभी बहूतही नुकसान होता है यदि सब जगह जयणा पूर्वक वर्त्तनमें आवे तो किसीकोभी हरकत न पहूंचने पावे, और धर्माराधनका बडा लाभ भी सहजहीमें हांसिल कर सकै वास्ते हे सुज्ञ जन वृंद ! लज्जा और दयावंत हो एक पलभरभी जयाणाको भूल नहीं जाना.

(३) उडाउ खर्च—मा बापके मरे बाद अगर लडका लडकीकी शादी के वख्त बहुत जगह फजुल खर्च करनेमें आता है, और उन वख्तोंमें करने लायक खर्च तर्फ बेदरकारी रखनेमें आती है. दृष्टांतरुप यह कि माता पिताने अंत कालमें वैराग्य द्वारा मोह उतारकर तन मन धनसे जिस प्रकार उन्होंको धर्म समाधि होवे—यावत् उन्होंकी या आपकी सद्गति जिस सुकृत करनेसे हो सकै उसी प्रकार वर्त्तना

लाजिम है. अवश्य करने लायक वो बावतका भान भूलकर पीछे फक्त लोकलाजसे नाहक भारी खर्चमें उतरना उन करसे तो उतनाहीं धन परमार्थ मार्गमें व्यय करना सो विशेष श्रेष्ठ है. पुत्रादिकके जन्म या लग्नादि प्रसंगपर परम मांगलिक श्री देवगुरुकी पूजा भक्ति भूलकर झूंठी धूमधाम रचनेमें लक्खों नही बलके करोडो जीवोंका विनाश होवे वैसी आतशबाजी छोडने वगैरेमें अपार धनका गैर उपयोग करनेमें आता है, वैसा भवभीरु सज्जनोंको करना नादुरुस्त है.

(४) मावापोंका उलटा शिक्षण और उलटा वर्तनः—मावाप, उनके मावापोंकी तर्फसे अच्छा धार्मिक व्यवहारिक वारसा मिला-नेमें कमनशीव रहनेसे, किंवा भाग्य योगसे मिले हुवे परभी उनको कुसंग द्वारा विनाश करनेसे अपने बालकोंको वैसा उमदा वारसा देनेमें भाग्यशाली किस तरह वन सके ? अगर कभी सत्संगति मिलगइ होवे तो वैसे मावाप भी अपने वाल वच्चोंको वैसा प्रशंसनीय वारिस-नामा करदेनेमें शायद भाग्यशाली वन भी शकै ! क्यौं कि—'सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ? यानि कहो भाइ ! उत्तम संगति पुरुषोंको क्या क्या सत्फल न दे सकती है ? सभी सत्फल दे सकती है ! ' उत्तम संगति के योगसे प्राणी उत्तमताको प्राप्त करता है, उत्तम बनता है, तो फिर वैसी अमूल्य सत्संगति करनेमें और करके कौनसा कमवख्त उत्तम फल पाणेमें बेनशीव रहेगा ? शास्त्र के जाननेवाले पंडित लोग कहते है कि—' बुरेमें बुरी और बुरेमें बुरे फलकी देनेहारी कुसंगतिही है.' तो बुरे फलको चखनेकी चाहनावाला कौन मंदमति ऐसी कुसंगतिको कवूल करेगा ? बस प्रशंगवशात् इतनाही कहकर अब विचार करें कि—अपने बाल-बच्चोंको सुखी करनेकी चाहतवाले मावाप वैसी कुसंगतिके—लडके लडकीको वचा रक्खें और सत्संगतिमें लगा देनेकी बडी खंत

रखकर उसको अमलमें लेवे. यदि ऐसा न करेंगे. तो वेसै मा बापोको बाल बच्चों के हित करनेवाले नही मगर बेधडकसे अहित—बुरा समझनेवाले ही कहेंगे. वै मावित्र नही किंतु कट्टे दुशमन ही समझो; क्यौ कि उन्हौने अपनें बाल बच्चोको जांन बुझकर या बेदरकारीसे सद्गतिका मार्ग बंधकर दुर्गतिका मार्ग खुल्ला कर दिया है, उलटे रस्ते पर चडा दिये हैं; वास्ते बालकका जन्म हुवेके पेस्तर भी गर्भमें उसको हरकेत न होवे उस तरह विषय सेवन संबंधमें संतोषयुक्त माबापोंको रहना चाहिये. जन्म हुवे बाद कुछ बोलना शिख लेवे तब तक, या बाल्यावस्था तक में वो बच्चा अपशब्द न सुने या बोले नहीं. तथा सूक्ष्म जंतूको भी मारनेका न सीखे और न मारे ऐसा उपयोग देनेमें मावित्रोंकों बडी खबरदारी रखनी चाहियें और उसको किसी बदचाल चलन—बद खिसलत वाले लोगोंकी सोबत न होने पावे उनकी बडी फिकर और तजवीज रखना चाहिये. जब समझके घरमें आया के तुरत उसको अच्छे विद्यागुरु या धर्मगुरुके वहा सोंप देना चाहिये. कि जो विद्याधर्मगुरु उसको विनय वगैरः सद्गुणोंका अच्छे प्रकार सह पूर्ण शिक्षण देवे. जिस्से प्राप्त हुइ विद्याकी सफलतारुप वो विवेकरत्न प्राप्त कर सके. अन्यथा कुसंग कुच्छंदके योगसे विनय विद्याहीन रहनेसे विवेक रहित पशु जैसी आचरणा करता हुवा जंगलके रोझकी तरह भवाटवीमें भटकता फिरता है.

बाललग्न कुजोड—ये सब विद्या विनयादिक पानेमें बडे हरकत रुप होते है, जिसके परिणामसे वे इस लोकके स्वार्थसे भ्रष्ट होकर परभवका भी साधन प्राय: नही कर सकते हैं; इतनाही नहीं लेकिन अनेक प्रकारके दुर्गुण शीखकर बडे कष्टोके भुक्तनेवाले हो जाते है; वास्ते बाल बच्चोका सुधारा करनेकी जोखमदारी माबा-

पोंके शिरपरसे कभी नहीं होती है, वो उन्होंको खूब शोचनेकी जरुरत है. मावापोंकी कसूरसे लडके मूर्ख प्रायः रहनेसे उन्हींको ही एक शल्यरुप होते है. और उन्हींकी पवित्र खंतसे बालक व्यवहार और धर्म कर्ममे निपूण होनेके सववसे उभय लोकमें सुखी होनेसे उन्होंको भवोभवमें शुभाशिर्वाद देते है. परंपरासे अनेक जीवोंके हितकर्ता होते है. और वे श्रेष्ठ मावापोंके दर्जेकी खुदकी फर्ज अपने वालबच्चे या संवधीयोंकी तर्फ अदा करनेमें नही चूकते हैं. हमेशा सज्जन वर्गमें अपने सद्विचार फैलानेके वास्ते यत्न करते है, और पारमार्थिक कार्योंमें अवल दर्जेका काम उठाकर दूसरे योग्य जीवोंको भी अपने अपने योग्य करनेकी प्रेरणा करते है. ये सव फायदे मावापोंके उत्तम शिक्षण और उत्तम चाल चलनपर आधार रखनेवाले होनेसे अपन इच्छेंगे कि भविष्यमें होनेवाली अपनी आल औलादका भला चाहनेवाले मावाप आप खुद उत्तम शिक्षण प्राप्त कर, उत्तम चालचलन रखकर अपने वाल वच्चांओंके अंतःकरणका शुभ धन्यवाद मिलानेको भाग्यशाली होवेंगे. (अस्तु !)

बोधकारक दृष्टांतोंका संग्रह

न्यायमें अन्याय करने पर शेठकी पुत्रीका दृष्टांत

एक धनवान शेठ था. वह शेठाईकी वढाई एवं आदर बहुमानका विशेष अर्थी होनेसे सवकी पंचायतमें आगेवानके तौरपर हिस्सा लेता था. उसकी पुत्री वडी चतुरा थी. वह वारंवार पिताको समझाती कि पिताजी अव आप वृद्ध हुए, वहुत यश कमाया अव तो यह सव प्रपंच छोडो. शेठ कहता है कि, नहीं. मै किसीका

पक्षपात या दाक्षिण्यता नही करता कि जिससे यह प्रपंच कहा जाय, मै तो सत्य न्याय जैसा होना चाहिये वैसा ही करता हू. लडकी वोली पिताजी, ऐसा हो नहीं सकता. जिसे लाभ हो उसे तो अवश्य सुख होगा परंतु जिसके अलाभमें न्याय हो उसे तो कदापि दुःख हुये विना नही रहता. कैसे समझा जाय कि वह सत्य न्याय हुवा है. ऐसी युक्तियोंसे वहुत कुछ समझाया परंतु शेठके दिमागमे एक न उतरी. एक समय वह अपने पिताको शिक्षा देनेके लिए घरमें असत्य झगडा करके वैठी और वोली कि पिताजी ! आपके पास मैने हजार सुवर्ण मोहरें धरोहर रखी हुई है, सो मुझे वापिस दे दो. शेठ आश्चर्याचकित होकर वोला कि वेटी, आज तु यह क्या बकती है ? कैसी मोहरें, क्या वात ? विचक्षणा वोली—नही नही जवतक मेरी धरोहर वापिस न दोगे तवतक मै भोजन भी न करूंगी और दूसरेको भी न खाने दूंगी. ऐसा कहकर दरवाजेके बीचमें वैठकर जिससे हजारो मनुष्य इकठे हो जाय उस प्रकार चिल्लाने लगी और साफ साफ कहने लगी कि इतना वृद्ध हुवा तथापि लज्जा शर्म है ? जो बालविधवाके द्रव्य पर वुरी दानत कर बैठा है. देखो तो सही यह मा भी कुछ नही वोलती और भाईने तो बिलकुलही मौन धारा है ! ये सब दूसरेके द्रव्यके लालचू वन बैठे है. मुझें क्या खवर थी कि ये इतने लालचू और दूसरेका धन दवाने वाले होंगे ? नहीं नहीं ऐसा कदापि न हो सकेगा. क्या वालविधवाका द्रव्य खाते हुए लज्जा नही आती ! मेरा रुपया अवश्य ही वापिस देना पडेगा. किस लिए इतने मनुष्योंमें हास्य पात्र बनते हो ? विचक्षणाके वचन सुनकर विचारा शेठ तो आश्चर्यचकित हो शरमिंदा वन गया, और सब लोग उसे फट-कार देने लग गये. इस बनावसे शेठके होस हवास उड गये. लोगोंकी फटकार स्त्रियोंके रोने कूटनेका करुण ध्वनि और लडकीका विलाप

इत्यादिसे खिन्न हो शेठने विचार करके चार बडे आदमियोंको बुला-कर पंचायत कराई. पंचायती लोगोने विचक्षणाको बुलाकर पूछा कि तेरी हजार सुवर्ण मुद्रायें जो शेठके पास धरोहर है उसका कोइ साक्षी या गवाहभी है? वह बोली—साक्षी या गवाहकी क्या बात? इस घरके सभी साक्षी है. मा जानती है, बहन जानती है, भाई भी जानता है, परंतु हडप करनेकी आशासे सब एक तरफ बैठे है, इसका क्या उपाय? यों तो सबही मनमें समझते हैं परंतु पिताके सामने कौन बोले? सबको मालूम होने पर भी इस समय मेरा कोइ साक्षी या गवाह बने ऐसी आशा नही है. यदि तुम्हें दया आती हो तो मेरा धन वापिस दिलाओ नही तो मेरा परमेश्वर वाली है. इसमें जो बनना होगा सो बनेगा. आप पंच लोग तो मेरे मांबापके समान है. जब उसकी दानतही बिगड गई तब क्या किया जाय? एक तो क्या परतु चाहे इक्कीस लंघन करने पडें तथापि मेरा द्रव्य मिले विना मै न तो खाऊंगी और न खाने दूंगी. देखती हूं अब क्या होता है. यों कहकर पंचोंके सिर भार डालकर विचक्षणा रोती हुई एक तरफ चली गयी.

अब सब पंचोंने मिलकर यह विचार किया कि सचमुचही इस बेचारीका द्रव्य शेठने दबा लिया है अन्यथा इस बिचारीका इस प्रकारके कलहट पूर्ण वचन निकलही नहीं सकते. एक पंच बोला अरे शेठ इतना धीठ है कि इस बेचारी अबलाके द्रव्य पर भी दृष्टि डाली. अंतमे शेठको बुलाकर कहा कि इस लडकी का तुम्हारे पास जो द्रव्य है सो सत्य है, ऐसी बाल विधवा तथा पुत्री उसके द्रव्यपर तुम्हें इस प्रकारकी दानत करना योग्य नहीं. ये पंच तुम्हें कहते है कीं उसका लेना हमे पंचोंके बीचमें ला दो या उसे देना कबूल करो और उस-बाईको बुलाकर उसके समक्ष मंजुर करो कि हां! तेरा द्रव्य मेरे

पास है फिर दुसरी बात करना. हम कुछ तुम्हे फसाना नहीं चहाते परंतु लडकीका द्रव्य रखना सर्वथा अनुचित है, इस लिए अन्य विचार किये विना उसका धन ले आओ. ऐसे वचन सुनकर विचारा शेठ लज्जासे लाचार बन गया शरममें ही उठकर हजार सुवर्ण मुद्राओंकी रकम लाकर उसनें पंचोंको सोंपी. पंचोने विलाप करती हुई बाईको बुलाकर वह रकम दे दी, और वे उठ कर रास्ते पडे.

इस बनावसे दूसरे लोगोंमें शेठकी बडी अपभ्राजना हुई. जिससे विचारा शेठ बडा लज्जित हो गया और मनमें विचार करने लगा कि हां ! हा ! मेरे घरका यह कैसा फजीता ! यह रांड ऐसी कहांसे निकली कि जिसने व्यर्थ ही मेरा फजीता किया और व्यर्थ ही द्रव्य ले लिया ! इस प्रकार खेद करता हुवा शेठ घरके एक कोनेमें जा बैठा. अब उसे दुसरोंकी पंचायत में जाना दूर रहा दूसरोंको मुह बतलाना या घरसे बहार निकलना भी मुश्किल हो गया. घरमें कुछ शांति हो जाने बाद शेठके पास आकर भाई बहिन और माताके सुनते हुए विचक्षणा बोली—क्यों पिताजी ! "यह न्याय सच्चा या झूठा ? इसमें आपको कुछ दुःख होता है या नहीं ?" शेठने कहा. इससे भी बढकर और क्या अन्याय होगा ! यदि ऐसे अन्यायसे भी दुःख न होगा तो वह दुनियांमें ही न रहेगा. विचक्षणाने हजार सुवर्ण मुद्राओंकी थैली लाकर पिताको सोंपी और कहा — पिताजी ! मुझे आपका द्रव्य लेनेकी जरुरत नहीं. यह तो परीक्षा बतलानी थी कि आप न्याय करने जाते हैं उनमें ऐसे ही न्याय होते है या नहीं ? इससे दूसरे कितने एक लोगोंको ऐसा ही दुःख न होता होगा ? इससे पंचोंको कितना पुण्य मिलता होगा ? मै आपको सदैव कहती थी परंतु आपके ध्यानमें हीं न आता था इस लिये मैंने परीक्षा कर दिखलानेके लिये यह सब कुछ बनाव किया था.

अब न्याय करना वह न्याय है या अन्याय ? सो बात सत्य हुई या नहीं, अबसे ऐसे पंचायती न्याय करनेमें शामिल होना या नहीं ? शेठ कुछ भी न बोल सका. अंतमें विचक्षणाने शात करके पिताको न्याय करने जानेका परित्याग कराया. इस लिये कही कही पर पूर्वोक्त प्रकारसे न्यायमें भी अन्याय हो जाता है इससे न्याय करनेमें उपरोक्त दृष्टांत पर ध्यान रखकर न्याय कर्त्ता को ज्यों त्यों न्याय न कर देना चाहिये, परंतु उसमें बडी दीर्घ दृष्टि रख कर न्याय करना योग्य है । जिससे अन्यायसे उत्पन्न होने वाले दोषका हिस्सेदार न बनना पडे.

धर्म करते अतुल धनप्राप्ति पर विद्यापति का दृष्टान्त.

एक विद्यापति नामक महा धनाढ्य शेठ था. उसे एक दिन स्वप्नमे आकर लक्ष्मीने कहा कि मैं आजसे दसवें दिन तुम्हारे घरसे चली जाऊंगी. इस बारेमें उसने प्रातःकाल उठकर अपनी स्त्रीसे सलाह की तब उसकी स्त्रीने कहा कि यदि वह अवश्य ही जानेवाली है तो फिर अपने हातसे ही उसे धर्ममार्गमें क्यों न खर्च डाले ? जिससे हम आगामी भवमें तो सुखी हों. शेठके दिलमे भी यह बात बैठ गई इस लिए पति पत्नीने एक विचार हो कर सचमुच एक ही दिनमें अपना तमाम धन सातों क्षेत्रोंमे खर्च डाला. शेठ और शेठानी अपना घर धन रहित करके मानो त्यागी न बन बैठे हों इस प्रकार होकर परिग्रहका परिमाण करके अधिक रखनेका त्यागकर एक सामान्य बिछौने पर सुख पूर्वक सो रहे. जब प्रातःकाल सोकर उठे तब देखते है तो जितना घरमें धन था उतना ही भरा नजर आया. दोनो जने आश्चर्य चकित हुये परंतु परिग्रहका त्याग किया होनेसे उसमेंसे कुछ भी परिग्रह उपयोग में न लेते. जो मिट्टीके वर्तन पहलेसे ही रख छोडे थे उन्हींमें सामान्य भोजन

बना खाते है, वे तो किसी त्यागीके समान किसी चीजको स्पर्श तक भी नही करते. अब उन्होनें विचार किया कि हमने परिग्रह का जो त्याग किया है सो अपने निजी अंग भोगमें खर्चनेके उपयोगमें लेनेका त्याग किया है परंतु धर्म मार्गमें खर्चनेका त्याग नहि किया. इस लिये हमे इस धनको धर्म मार्गमें खर्चना योग्य है. इस विचारसे दूसरे दिन दुपहरसे सातों क्षेत्रमें धन खर्चना शुरु किया. दीन, हीन, दु.खी, श्रावकों को तो निहालही कर दिया. अब रात्रीको सुख पूर्वक सो गये. फिर भी सुबह देखते है तो उतना ही धन घरमें भरा हुवा है जितना कि पहेले था. इससे दूसरे दिन भी उन्होने वैसा ही किया, परंतु आगले दिन उतनाही धन धरमें आ जाता है. इस प्रकार जब दस रोज तक ऐसा ही क्रम चालू रहा तब दसवी रात्रीको लक्ष्मी आकर शेठसे कहने लगी कि. वाहरे भाग्यशाली ! यह तुने क्या किया ? जब मैंने अपने जानेकी तुझे प्रथमसे सूचना दी तब तूने मुझे सदाके लिये ही बांध ली. अब मै कहा जाऊं ? तूने यह जितना पुण्य कर्म किया है इससे अब मुझे निश्चित रुपसे तेरे घर रहना पडेगा. शेठ शेठानी बोलने लगे कि अब हमें तेरी कुछ अवश्यकता नहीं हमने तो अपने विचारके अनुसार अब परिग्रह का त्याग ही कर दिया है. लक्ष्मी बोली– " तुम चाहे सो कहो परंतु अब मै तुम्हारे घरको छोड नही सकती. " शेठ विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिये यह तो सचमुचही पीछे आ खडी हुइ. अब यदि हमें अपने निर्धारित परिग्रहसे उपरात ममता हो जायगी तो हमें यहा पाप लगेगा, इस लिये जो हुवा सो हुवा, दान दिया सो दिया, अब हमें यहा रहना ही न चाहिये. यदि रहेंगे तो कुछ भी पापके भागी बन जायेंगे. इस विचारसे ये दोनों पति पत्नी महा लक्ष्मीसे भरे हुये घर बारको

जैसाका तैसा छोडकर तत्काल चल निकले. चलते हुये ये एक गांवसे दूसरे गांव पहुंचे, तब उस गांवके दरवाजे आगे वहांका राजा अपुत्र मर जानेसे मंत्राधिवासित हाथीने आकर शेठ पर जलका अभिषेक किया, तथा उसे उठा कर आपनी स्कंधपर बैठा लिया. छत्र चामरादिक राजचिन्ह आपहि प्रगट हुये जिससे वह राजाधिराज बन गया. विद्यापति विचारता है अब मुझे क्या करना चाहिये ? इतनेमे ही देववाणी हुई कि जिनराज की प्रतिमाको राज्यासन पर स्थापन कर उसके नामसे आज्ञा मान कर अपने अंगीकार किए हुये परिग्रह परिमाण व्रतको पालन करते हुये राज्य चलानेमें तुझे कुछ भी दोष न लगेगा. फिर उसने राज्य अंगीकार किया परंतु अपनी तरफसे जीवन पर्यंत त्यागवृत्ति पालता रहा. अंतमें स्वर्गसुख भोगकर वह पांचवें भवमें मोक्ष जायगा.

देना रिर रखनेसे लगते हुए दोष पर महीषका दृष्टांत

महापुर नगरमें वडा धनाढ्य व्यापारी ऋषभदत्त नामके शेठ परम श्रावक था. वह पर्वके दिन मंदिर गया था. वहां उस वक्त उसके-पास नगद द्रव्य न था, इससे उसने उधार लेकर प्रभावना की. घर आये बाद अपने गृहकार्य की व्यग्रतासे वह द्रव्य न दिया गया. एक दफा नशीब योगसे उसके घर पर डाका पडा उसमें उसका सब धन लुट गया. उस वक्त वह हाथमें हथियार ले लुटेरोंके सामने गया. इससे लुटेरोंने उसे शस्त्रसे मार डाला. शस्त्राघात से आर्त-ध्यानमें मृत्यु पाकर उसी नगरमें एक निर्दय और दरिद्री पखालीके घर (सक्केके घर) वह भैसा हुवा. वह प्रतिदिन पानी ढोने वगैरेह का काम करता है. वह गाम वडे ऊंचे पर था और गांवके समीप नदी नीचे प्रदेशमें थी. अब उसे रात दिन नदीमें से नीचेसे ऊपर पानी

ढोना पडता था, इससे उसे बडा दुःख सहन करना पडता. भूख प्यास सहन करके शक्तिसे उपरांत पानी उठाकर ऊंचे चढते हुए वह पखाली उसे निर्दय होकर मारता है, और वह सर्व कष्ट उसे सहन करना पडता है. ऐसे करते हुए बहुतसा समय व्यतीत हुवा. एक समय किसी एक नवीन तैयार हुए मंदिरका किल्ला बंधता था, उस कार्यके लिये पानी लाते समय जाते आते मंदिरकी प्रतिमा देखकर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा. अब उसका मालिक उसे बहुत ही मारता पीटता है तथापि वह पूर्व भव याद आनेसे उस मंदिरका दरवाजा न छोडकर वहाही खडा हो गया. इससे वहा मदिरके पास खडे हुए उस भैंसेको मारते पीटते देख किसी ज्ञानी साधुने उसके पूर्व भवका समाचार सुनाया इससे उसके पुत्र, पौत्रादिकने वहां आकर पखालीको अपने पिताके जीव भैंसेको धन देकर छुडाया, और पूर्व भवका जितना कर्ज था उससे हजार गुना देकर उसे कर्ज मुक्त किया. फिर अनशन आराधकर वह स्वर्गमें गया और अनुक्रमसे मोक्ष पदको प्राप्त हुआ. इस लिये अपने सिर कर्ज न रखना चाहिए. विलंब करनेसे ऐसी आपात्तिया आ पडती है.

पाप रिद्धि पर दृष्टांत

वसंतपुर नगरमें क्षत्रिय, विप्र, वणिक, और सुनार ये चार जने मित्र थे. वे कही द्रव्य कमानेके लिये परदेश निकले. मार्गमें रात्रि हो जानेसे वे एक जगह जंगलमें ही सो गये. वहां पर एक वृक्षकी शाखामें लटकता हुवा, उन्हें सुवर्ण पुरुष देखनेमें आया. (यह सुवर्ण पुरुष पापिष्ट पुरुषको पाप रिद्धी बन जाता है और धर्मिष्ट पुरुषको धर्म ऋद्धि हो जाता है) उन चारोमेसे एक जनेने पूछा क्या तू अर्थ है ? सुवर्ण पुरुषने कहा "हा ! मै अर्थ हुं. परंतु अनर्थकारी हूं" यह वचन सुनकर दुसरे भय भीत हो गये

परंतु सुनार बोला कि यद्यपि अनर्थकारी है तथापि अर्थ-द्रव्य तो है न ? इस लिये जरा मुझसे दूर पड. ऐसा कहते ही सुवर्ण पुरुष एकदम नीचे गिर पडा. सुनारने उठकर उस सुवर्ण पुरुषकी अंगुलिया काट ली और उसे वहा ही जमीनमें गढा खोदकर उसमें दबाकर कहने लगा कि, इस सुवर्ण पुरुषसे अतुल द्रव्य प्राप्त किया जा सकता है, इस लिये यह किसीको न बतलाना. बस इतना कहते ही पहले तीन जनोके मनमें आशाकुर फूटे. सुबह होनेके बाद चारोंमेंसे एक दो जनोको पासमे रहे हुये गांवमेंसे खान पान लेनेके लिये भेजा. और दो जने वहां ही बैठे रहे. गावमें गये हुवोने विचार किया कि, यदि उन दोनोंको जहर देकर मार डालें तो वह सुवर्ण पुरुष हम दोनोंकोही मिल जाय. यदि ऐसा न करें तो चारोंका हिस्सा होनेसे हमारे हिस्सेका चतुर्थ भाग आयगा. इस लिये हम दोनो मिल कर यदि भोजनमे जहर मिलाकर ले जाय तो ठीक हो. यह विचार करके वे उन दोनोके भोजनमें विष मिलाकर ले आये. इधर वहांपर रहे हुए उन दोनोने विचार किया कि हमें जो यह अतुल धन प्राप्त हुवा है. यदि इसके चार हिस्से होगे तो हमे बिलकुल थोडा थोडा ही मिलेगा, इस लिये जो दो जने गावमें गये है उन्हे आते ही मार डाला जाय तो सुवर्ण पुरुष हम दोनोंको ही मिले. इस विचारको निश्चय करके बैठे थे इतनेमें ही गावमें गये हुए दोनो जने उनका भोजन ले कर वापिस आये तब शीघ्र ही वहा दोनो रहे हुए मित्रोने उन्हें शस्त्र द्वारा जानसे मार डाला. फिर उनका लाया हुवा भोजन खानेसे वे दोनो भी मृत्युको प्राप्त हुये. इस प्रकार पाप ऋद्धिके आनेसे पाप बुद्धि ही उत्पन्न होती है अतःपाप बुद्धि उत्पन्न न होने देकर धर्म ऋद्धि ही कर रखना जिससे वह सुख दायक और अविनाशी होती है.

विविध विषयोके प्रश्नोत्तर संग्रह

प्रश्न १ धर्म कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर गृहस्थ धर्म और यति–साधु धर्म यह दो प्रकार के है.

प्रश्न २ गृहस्थ धर्म किसको कहते है ?

उत्तर––गृह (घर) वासमें रहकर श्री जिनेश्वर देवोक्त तत्व श्रद्धापूर्वक वन सके, तैसे व्रत, पच्चखाण करे उसको गृहस्थ धर्म कहा जाता है.

प्रश्न ३ साधु–यतिधर्म किसको कहते है ?

उत्तर––गृहस्थावास त्यागकर पाच महाव्रत आंगिकार करके रात्रि–भोजन त्याग व्रत आदिके लीये सख्त नियम धारन करके गृहस्थोको वोध देना सो साधुधर्म कहा जाता है.

प्रश्न ४ पाच महाव्रत कोनसे है ?

उत्तर विलकुल जीवहिंसा, झूट, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन सवका त्याग यह पांच महान व्रत है.

प्रश्न ५ विलकुल जीवहिंसाका त्याग किस रीतिसे पालना चाहिये ?

उत्तर किसी जीवको राग द्वेषसे नाश करना नाहिं, नाश करानेकी सम्मतीभी न दें और जो कोइ शख्स नाश करता हो उसकी अनुमोदना (अच्छा करता है ! ठीक किया है ! ऐसा कहना) भी मन वचन और कायासे न करे, उसको अहिंसाधर्म पालन करा कहा जाता है.

प्रश्न ६ विलकुल झूंट वोलनेका त्याग किस प्रकारसे पाले ?

उत्तर क्रोध, मान, माया, लोभ, भय या हास्यसें थोडा भी झूंट न वोले.

प्रश्न ७ विलकुल माल धनीके दिये शिवाय कुछ भी चीज न लेवे

वह अदत्तादान लेनेका नियम किस रीतिसे पाले?

उत्तर जिनेश्वर भगवान्‌की या गुरुजीकी आज्ञा विरुद्ध कुछ भी चीज लेवे देवे नहि. अगर उन्होंकी आज्ञा हुए बादभी जो मालधनीकी रजा न मिली हो तो कुच्छभी चीज लेवे देवे नहि. अगर मालधनीकी रजा मिलचूकी हो मगर सचित्त या मिश्र वस्तु हो तो लेवे नहि, उसको अदत्तादान विरमण व्रत पालन किया कहा जाता है.

प्रश्न ८ सर्वथा मैथुन त्याग—ब्रह्मचर्यव्रत किस प्रकारसे पालना?

उत्तर—देव, मनुष्य और तिर्यच सबंधी विषय क्रीडा बिलकुल त्याग दे, किंवा पांचों इद्रियोंके विषयोंको कब्ज करे. आप उन्होंको वश्य न हो, उसको सर्वथा मैथुन त्याग किया कहा जावे.

प्रश्न ९ सर्वथा परिग्रह त्याग किस तराहसे पालन करे?

उत्तर—जीस्से मूर्छा हो तैसी भारे या हलकी (सचेत अचेत या मिश्र) वस्तुका संग्रह ही न करें तब बिलकुल परिग्रह परित्याग किया कहा जावे.

प्रश्न १० सर्वथा रात्रि भोजनका त्याग किस प्रकारसे पाले?

उत्तर—कोइ भी प्रकारका आहार, सूर्योदय हुए प्रथम या सूर्यास्त हुए बाद न खावे. (वास्तविक रीति तो यह है कि सूर्यके उदय होने बाद दो घडी और सूर्य अस्त पहिलेकी दो घडी भी त्याग देनी योग्य है. नहि तो रात्रि भोजनका भांगा लगता है.

प्रश्न ११ उपर कहे हुए व्रतोंको महाव्रत कहनेका सबब क्या है?

उत्तर. गृहस्थके अणुव्रतकी अपेक्षासे वो महाव्रत कहे जाते है. किंवा महान् शूरवीर मनुष्यसे ही सेवन कीये जाते है (डरपोक—कातरसे सेवन न कीये जावे) इसी लिये उन्हको महाव्रत कहते है.

प्रश्न १२ अणुव्रत किसको कहते है?

उत्तर अणु अर्थात् छोटा. मुनिके महान् व्रतोंसे बहोतही कम—

अल्प होनेसे अणुव्रत कहे जाते है.

प्रश्न १३ गृहस्थके अणुव्रत कोनसे कोनसे है ?

उत्तर---स्थूल (वडी) हिसा, झूठ, चोरी, मैथुनका त्याग और परिग्रहका प्रमाण रखे, वह गृहस्थके पाच अणुव्रत है.

प्रश्न १४ स्थूल हिंसासे छूठ जाना वो कैसे ?

उत्तर---निरपराधी, त्रस जीवकी निष्कारण जान वुझके हिसा न करे, सो स्थूल हिंसासे मुक्त होना कहा जाता है.

प्रश्न १५ स्थूल जूठसे वच जाना सो क्या ?

उत्तर कन्या, पशु, भूमि संवंधी नाहक झूठ वोलना, कोर्ट अदालतमें जाकर जूठी गवाह देना और खोटे दस्तावेज वनाना यह पांच वडे जूठोंसे अलग हो जाना उस्को स्थूल असत्य विरमण व्रत कहते है.

प्रश्न १६ स्थूल अदत्त–चोरीका त्याग व्रत किस तरह है ?

उत्तर---जान वूझकर चोरी करनी, या चोरीका माल खरीदना, पिराया माल हजम कर जाना, विश्वासघात करना, अच्छी बूरी चीजोंको एकत्र मिलाना और जकात–दाणचोरी करना. मतलबमें जिस्से राजदंडका भय प्राप्त होय सोही चोरी कही जाती है. वह उक्त कथित पाच भेद अदत्तका त्याग करे.

प्रश्न १७ स्थूल मैथुन त्याग किसको कहते है ?

उत्तर परस्त्री, वेश्या, विधवा, या बालकुमारी इन्होंके साथ अत्याचार–संभोग करनेका विलकुल त्याग करके अपनी विवाहिता स्त्रीमें संतोष करे. (स्त्री अपने पतिमें संतोष करें). तो स्थूल मैथुन त्याग व्रत कहा जाता है.

प्रश्न १८ परिग्रह प्रमाण किस्कों कहा जाता है ?

उत्तर---धन, धान्य वगैरेः नव प्रकारके परिग्रहका प्रमाण अर्थात्

'इतनेसे ज्यादा मेरे स्वभोगार्थ न चाहिये' ऐसा नियम रखे और प्रमाणसे ज्यादा हो सो शुभ धर्म मार्गमें व्यय कर देवे, उस्को परिग्रह प्रमाण व्रत कहते है.

प्रश्न १९ यह पांच अणुव्रतके शिवाय गृहस्थको दूसरे कोनसे व्रत होते है?

उत्तर तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह मिलकर बारह व्रत होत है.

प्रश्न २० तीन गुणव्रत कोनसे कोनसे है?

उत्तर दिशा (जाने आनेका) प्रमाण, भोगोपभोग, और अनर्थ दंड यह तीन गुणव्रत संज्ञा धारक है!

प्रश्न २१ दिशा प्रमाण व्रत किस्को कहते है?

उत्तर——पूर्व, पश्चिम उत्तर दक्षिण यह चार दिशा और ईशान, वायव्य, नैऋत्य, अग्निय यह चार विदिशा, और उपर नीचे जाने आनेका संबंधमें धर्म कार्य शिवाय अपने कार्य निमित्त जाने आनेका प्रमाण प्रतिबंध रखे उस्को दिशा प्रमाण कहते है.

प्रश्न २२ भोगोपभोग विरमण व्रत किस्को कहते है?

उत्तर पंद्रह कर्मादान महापाप व्यापारका त्याग करे, और चौदह नियम धारण करे उस्को भोगोपभोग विरमणव्रत कहते है.

प्रश्न २३ अनर्थ दंड विरमण किस्को कहते है?

उत्तर—— पाप कार्यके साधनभूत—कुल्हारा, हल, मूशल, चक्की वगैरे: तैयार करके दूसरेको न देवे, पापका उपदेश न देवे, आर्त-रौद्रध्यान न ध्यावे, नाटक चेटक—खेल तमासे भांडोकी नकल वे-श्याओंका नाच न देखे, और हिंसक-मासाहारी जीवोका व्यापार अर्थे न पोषण करे अर्थात् पापी जीवोंको न पाले उस्को अनर्थदंड

विरमण व्रत कहते है.

प्रश्न २४ चार शिक्षाव्रत कोनसे कोनसे है ?

उत्तर सामायिक, दिशावगासिक, पौषध और अतिथि संविभाग यह चार शिक्षाव्रत कहे जाते है.

प्रश्न २५ सामायिक व्रत किस्को कहते है ?

उत्तर—— संकल्प निश्चयपूर्वक समताभावमें पाप व्यापारको त्याग कर जघन्य दो घडी और उत्कृष्ट जीवन पर्यंत कायम रहे उस्को सामायिक व्रत कहते है.

प्रश्न २६ दिशावगासिक व्रत किस्को कहते है ?

उत्तर—— छठ्ठे व्रतमें धारण की हुइ दिशाओंका संक्षेप करना और मर्यादामें रहकर धर्मध्यान सेवन करना उसीको दिशावगासिक व्रत कहते है.

प्रश्न २७ पौषध व्रत किस्को कहा जाता है ?

उत्तर—— जीस्से धर्मकी पुष्टि-वृद्धि हो वह पौषधके चार प्रकार है. १ आहार पोषह, उपवास अयंबिळ वगेरे २ शरीरसत्कार त्याग पोषह ३ ब्रह्मचर्य पोषह और ४ पाप व्यापार परिहार करनेरुप पोषह. यह चार भेद है सो उपयोगमें लेवे उस्को पौषधव्रत कहा जाता है.

प्रश्न २८ आथिति संविभाग व्रत सो क्या ?

उत्तर——अतिथि याने अणगार साधुजी उन्होको आहार पाणी व्होराकर सुपात्र दान देकर भोजन करे सो अतिथि संविभाग व्रत कहा जाता है.

प्रश्न २९ दुनियामें कौनसी बाबत रात दिन सदा चिंतन करने योग्य है ?

उत्तर—— संसारकी असारता——अनित्यता निरंतर चिंतवन करने

योग्य है परंतु महा मोहको उत्पन्न करनेवाली प्रमदा स्त्री चिंतवन करने योग्य नहि है. तिस्के रंग रुपसे रंजित होना नहि, लेकिन तिस्को विकार कारिणी जानकर त्याग देनी योग्य है.

प्रश्न ३० कौनसी कौनसी बाबते विशेष प्रिय वल्लभ गिनकर आदरनी चाहिये ?

उत्तर–– करुणा, दुःखी जीवोपर अनुकंपा, दाक्षिण्यता और सब जीवोंके उपर समान भाव मैत्रीभाव याने " आत्मवत् सर्व भूतेषु " ऐसी बुद्धि रखना चाहिये.

प्रश्न ३१ प्राणांत कष्ट आ जानेपरभी किस किसके वश्य नहि होना ?

उत्तर–– मूर्ख (अज्ञानी–अविवेकी), दीनता, गर्व और कृतघ्नके वश नहि होना.

प्रश्न ३२ जगत्में पूजने योग्य कौन है ?

उत्तर–– सदाचारी, शुद्ध व्रतधारी–निर्मल चारित्रवंत जन पूजने योग्य है.

प्रश्न ३३ जगत्में कमनसीब कौन है ?

उत्तर–– भग्नव्रती–भग्न परिणामी–खंडित शीलवाला बेशक कम नसीबदार है.

प्रश्न ३४ जगत्में कौन वश कर शकता है ? जन प्रिय कौन हो शकता है ?

उत्तर - हित मित (सत्य) भाषी और सहनशील क्षमावंत हो सो जगत्मान्य और प्रितिपात्र हो सकता है.

प्रश्न ३५ देव भी कैसे मनुष्यको नम्रतासे नमन करते है ?

उत्तर–– दया प्राधान्य–जिनके हृदयमें उत्तम दयाधर्म स्थित हो तिनको देव भी नमन करते है.



ગુજરાતી ભાષાનો વિભાગ.

વૈરાગ્યસાર ને ઉપદેશ રહસ્ય.

(૧) જે પરાઇ નિંદા વિકથા કરવામાં મુંગો છે, પરસ્ત્રીનું મુખ જોવામાં આંધળો છે, અને પરાયુ ધન હરવામાં પાંગળો છે, તેવો મહાપુરુષજ જગમા જયવંતો વર્તે છે. પરનિંદા, પરસ્ત્રીમાં રતિ અને પરદ્રવ્ય હરણ મહા નિંદ્ય છે.

(૨) જે આક્રોશ ભરેલા વચનોથી દૂમાતો નથી અને ખુશામતથી ખુશી થઇ જતો નથી, જે દુર્ગન્ધથી દુગંછા કરતો નથી, અને ખુશબોથી રાજી થઇ જતો નથી, જે સ્ત્રીના રુપમાં રતિ ધારતો નથી, અને મૃતશ્વાનથી સૂગ લાવતો નથી, એવો સમભાવી ઉદાસી યોગીશ્વરજ સર્વત્ર સુખ સમાધિમા રહે છે.

(૩) જેને શત્રુ અને મિત્ર બને સમાન છે, જેને ભોગની લાલસા તૂટી ગઇ છે, અને તપશ્ચર્યામાં જેને ખેદ થતો નથી, જેને પથ્થર અને સુવર્ણ (રત્નાદિક) બંને સમાન છે, એવા શુદ્ધ હૃદયવાળા સમભાવી યોગીજનોજ ખરા યોગધારી છે.

(૪) કુરંગની જેવા ચંચળ નેત્રવાળી અને કાળા નાગની જેવા કુટિલ કેશને ધારવાવાળી કામિનીના રાગ પાશમા જે નથી પડી જાતા તેજ ખરા શૂરવીર છે.

(૫) સ્ત્રીના મધ્યમા કૃશતા, ભ્રુકુટીમાં વક્રતા, કેશમાં કુટીલતા, હોઠમા રક્તતા, ગતિમા મંદતા, સ્તનભાગમા કઠીનતા, અને ચક્ષુમા ચચળતા સ્પષ્ટ જોઇને ફક્ત કામાકુલ મંદમતિ જનોજ વૈરાગ્યને

भजता नथी. सुविवेकी जनोने तो ते वैराग्यनी वृद्धि माटेज थाय छे.

(६) स्त्रीयो कपट करि गद्गद् वाणीथी बोले छे, तेने कामांधजनो प्रेमभक्ति तरीके लेखे छे. विवेकी हंसो तेथी ठगाइ जता नथी.

(७) ज्यां सुधी आहारनी लोलुपता तजी नथी, सिद्धांतना अर्थरुपी महौषधिनुं सम्यग् सेवन कर्युं नथी, अने अध्यात्म अमृतनुं विधिवत् पान कर्युं नथी, त्या सुधी विषय ज्वरनु जोर जोइए तेवुं घटतुं नथी. विषय तापनी शांति माटे रसलौल्यना त्याग पूर्वक सिद्धांतसार चूर्ण तथा तत्त्वामृतनुं सम्यग् सेवन करवुंज जोइए.

(८) भरयौवन वयमां कामने जय करनार धन्य धन्य छे.

(९) जेणे जाणी जोइने कामिनीने तजी छे, अने संयमश्रीने सेवी छे, एवा सुविवेकी साधुने कुपित थयेलो पण काम कंइ करी शकतो नथी.

(१०) प्रियाने देखतांज कामज्वरनी परवशताथी संयम–सत्त्व क्षीण थइ जाय छे, पण नरकगतिना विपाक सांभरताज तत्त्वविचार प्रगट थवाथी गमे तेवी व्हाली वल्लभा पण विष जेवी भासे छे.

(११) जेमणे यौवन वयमा पवित्र धर्म धुराने धारी महाव्रतो अंगीकार कर्या छे, तेवा भाग्यशाळी भव्योथीज आ पृथ्वी पावन थयेली छे.

(१२) कामदेवना बंधुभूत वसंतने पामीने सकळ वनराजी पण विविध वर्णवाळी माजरना मिषथी रोमांचित थयेली लागे छे, तेमां सिद्धांतना सारनुं सतत सेवन करवाथी, जेमनु मन विषय तापथी लगारे तप्त थतुं नथी, एवा संत सुसाधु जनोनेज धन्य छे.

(१३) स्वाध्यायरुपी उत्तम संगीत युक्त, संतोषरुपी श्रेष्ठ पुष्पथी मंडित, सम्यग् ज्ञान विलासरुपी उत्तम मंडपमा रही शुभ ध्यान शय्याने सेवी, तत्त्वार्थ बोधरुपी दीपकने प्रगटी अने समता-

रुपी श्रेष्ट स्त्रीनी साथे रमण करी केवळ निर्वाण सुखना अभिलाषी महाशयोज रात्रीने समाधिमा गाळे छे.

(१४) शुद्ध ध्यानरुपी महा रसायणमां जेनुं मन मग्न थयुं छे, तेने कामिनीना कटाक्ष वगेरे विविध हावभावो शुं करनार छे ?

(१५) सम्यग् ज्ञानरुपी जेना उंडा मूळ छे, समकितरुपी जेनी मजबूत शाखा छे, एवा व्रत–वृक्षने जेणे श्रद्धाजळथी सिंच्युं छे तेने अवश्य मोक्षफळ आपे छे. स्वर्गादिकना सुख तो पुष्पादिकनी पेरे प्रासंगिक छे, तेतो सहजमां प्राप्त थइ शके छे.

(१६) क्रोधादिक उग्र कषायरुपी चार चरणवाळो, व्यामोहरुपी सूंढवाळो, राग द्वेषरुपी तीक्ष्ण दीर्घ दांतवाळो, अने दुर्वार कामथी मदोन्मत्त थयेलो, महा मिथ्यात्वरुपी दुष्ट गजने सम्यग् ज्ञान–अंकूशना प्रभावथी जेणे वश कर्यो छे, ते महानुभावेज त्रणे लोकने स्ववश कर्या छे एम जाणवुं.

(१७) यशकीर्तिने माटे पोतानुं सर्वस्व आपी दे एवा, अने पोताना स्वामीने माटे प्राण पण आपी दे एवा, बहु जनो मळी आवशे, पण शत्रु मित्र उपर जेमनुं मन समरस (सरखुं) वर्ते छे एवा तो कोइ विरलाज देखाय छे.

(१८) जेनुं हृदय दयार्द्र छे, वचन सत्यभूषित छे, अने काया परमार्थ साधनारी छे, एवा विवेकवानने कळिकाळ शुं करी शकवानो छे ?

(१९) जे कदापि असत्य बोलतोज नथी, जे रणसंग्राममां पाछी पानी करतो नथी, अने याचकोनो अनादर करतो नथी, तेवा रत्नपुरुषथीज आ पृथ्वी रत्नवती कहेवाय छे. केमके कहेवाय छे के–‘ बहुरत्ना वसुंधरा. ’

(२०) सर्व आशारुपी वृक्षने कापवा कुवाडा जेवो काळ, जो

सर्वनी पाछळ पडयो न होत तो विविध प्रकारना विषय सुखथी कोइ कदापि विरक्त थातज नहिं.

(२१) जगतनी कल्पित मायामा फसाइ जीवो ममताथी मारुं मारुं कर्या करे छे, पण मूढताथी समीपवर्ती कोपेला कृतांत—काळने देखी शकता नथी. नहिं तो जगतनी मिथ्या मोह मायामां अंजाइ जइ मारुं मारुं करीने तेओ केम मरे ?

(२२) छती सामग्रीनो सदुपयोग करवामा बेदरकार रहेनारने काळ समीप आव्ये छते मनमा खेद थाय छे के हाय ! मे स्वाधीन-पणे कांइ पण आत्म साधन न कर्युं, हवे पराधीन पडेलो हुं शुं करी शकुं ? प्रथमथीज सावधानपणे सत् सामग्रीने सफळ करी जाणनारने पाछळथी खेद करवो पडतोज नथी.

(२३) प्रथम प्रमादवडे तप जप व्रत पच्चख्खाण नहिं करनार कायर माणस पाछळथी व्यर्थ मात्र दैवनेज दोष दे छे. खरो दोष तो पोतानोज छे के पोते छती सामग्रीए सवेळा चेत्यो नहिं.

(२४) बाळ शीघ्र योवन वयने प्राप्त करतो अने जुवान जरा अवस्थाने प्राप्त थतो अने ते पण काळने वश थयो छतो, दृष्ट नष्ट थयो देखाय छे; एवा प्रत्यक्ष कौतुकवाळा बनाव देख्या बाद बीजा इंद्रजाळनुं शुं प्रयोजन छे ? आ संसारज अनेक पात्रयुक्त विचित्र नाटकरुपज छे.

(२५) कर्मनुं विचित्रपणुं तो जूवो ? के मोटा राजाधिराज पण दुर्दैव योगे भीख मागतो देखाय छे; अने एक पामर भीखारी जेवो मोटुं साम्राज्य सुख पामे छे. ए पूर्वकृत कर्मनोज महिमा छे.

(२६) परलोक जतां प्राणीने पुत्रादिक संतती तेमज लक्ष्मी विगेरे कामे आवतां नथी. फक्त पुण्यने पापज तेनी साथे जाय छे.

(२७) मोहना मदथी मानवी मनमां धारे छे के, धर्म तो

આગળ કરશે. પણ વિકરાળ કાળ અચાનક આવીને તે બાપડાનો કોળીયો કરી જાય છે. પવિત્ર ધર્મનું અરાધન કરવામાં પ્રમાદ સેવનાર ખરેખર ઠગાઇ જાય છે; માટેજ કહ્યું છે કે 'કાલે કરવું હોય તે આજે કર અને આજે કરવું હોય તે અબઘડીએ કર.' કેમકે કાલને કાળનો ભય છે.

(૨૮) રાવણ જેવા રાજવી, હનુમાન જેવા વીર અને રામચંદ્ર જેવા ન્યાયીનો પણ કાળ કોળીયો કરી ગયો તો બીજાનું તો કહેવુંજ શું ? આથીજ કાળ સર્વભક્ષી કહેવાય છે, એ વાત સત્ય છે.

(૨૯) સુકૃત યા સદાચરણ વિના માયામય બંધનોથી બંધાયેલા સંસારી જીવોની મુક્તિ—મોક્ષ શી રીતે થઇ શકે વારુ ?

(૩૦) આ મનુષ્ય જન્મરુપી ચિંતામણી રત્ન પામીને, જે ગફલત કરે છે, તે તેને ગુમાવીને પાછળથી પસ્તાવો કરે છે. કામ ક્રોધ, કુબોધ, મત્સર, કુબુદ્ધિ અને મોહ માયાવડે જીવો સ્વજન્મને નિષ્કળ કરી નાંખે છે.

(૩૧) આ મનુષ્ય દેહાદિક શુભ સામગ્રીનો સદુપયોગ કરવાથી નિર્વાણ સુખ સ્વાધીન થઇ શકે તેમ છતા, રાગાધ વની જીવ મોહમાયામાં મુંઝાઇ મૂઢની જેમ કોટી મૂલ્યવાળુ રત્ન આપી કાગણી ખરીદે છે.

(૩૨) ભયંકર નર્કાદિકનો મોટો ડર ન હોત તો કોઇ કદાપિ પાપનો ત્યાગ કરી શકત નહિ; અને સદ્ગુણનો માર્ગ સેવી શકત નહિ.

(૩૩) જેણે નિર્મલ શીળ પાળ્યું નથી, શુભ પાત્રમાં દાન દીધું નથી અને સદ્ગુરુનું વચન સાંભળીને આદર્યુ નથી, તેનો દુર્લભ માનવ ભવ અલેખે ગયો જાણવો.

(૩૪) સંયોગનું સુખ ક્ષણીક છે; દેહ વ્યાધિગ્રસ્ત છે અને ભયંકર કાળ નજદીક આવતો જાય છે; તોપણ ચિત્ત પાપ કર્મથી વિરક્ત કેમ થતું નથી ? અથવા સંસારની માયાજ વિલક્ષણ છે.

(૩૫) આ સંસાર ચક્રમાં જીવ અનંતશઃ જન્મ મરણના અસહ્ય દુઃખ સહ્યાં છતાં હજી તેથી મન ઉદ્વિગ્ન થતું નથી, અને પાપ ક્રિયામાં તો તે અહોનિશ મગ્નજ રહે છે.

(૩૬) અહો આકેળા સાંઢની પેરે ચિત્ત સ્વેચ્છા મુજબ નિંદ્ય માર્ગમાં ભમ્યા કરે છે; પણ ચારિત્ર ધર્મની ધુરાને અને મહાવ્રતના ભારને વહન કરતું નથી ! આથીજ આત્માની સંસાર ચક્રમાં બહુ પ્રકારે ખરાબી થાય છે.

(૩૭) પૂર્વ પુણ્યયોગે અનુકૂળ સામગ્રી મળ્યા છતાં પ્રમાદના વશથી જીવ કંઇ પણ આત્મસાધન કરી શકતો નથી, તેથીજ તેને સંસારચક્રમા પુનઃ પુનઃ ભમવું પડે છે.

(૩૮) જેણે સંસાર સંબંધી સર્વ દુઃખનાં મૂળ કારણભૂત ક્રોધ માન, માયા અને લોભરૂપી ચારે કષાયોને હઠાવવા પ્રયત્ન કર્યો નથી, તે બાપડાએ હાથમાં આવેલુ મનુષ્યજન્મરૂપી કલ્પવૃક્ષનું અમૃત ફળ ચાખ્યુંજ નથી.

(૩૯) બાલ્યવય ક્રીડા માત્રમાં, યોવનવય વિષયભોગમાં અને વૃદ્ધ અવસ્થા વિવિધ વ્યાધિના દુઃખમા હારી જનારને સુકૃતના અભાવે પરલોકમાં કંઇ પણ સુખ સાધન મળી શકતું નથી.

(૪૦) જે દ્રવ્યના લોભથી જીવ અનેક આકરાં જોખમમાં ઉતરે છે, તે દ્રવ્યનું અસ્થિરપણું વિચારીને સંતોષ વૃત્તિ ધારવી ઉચિત છે.

(૪૧) આ મનમર્કટ મોહ મદિરાના મદથી મત્ત બન્યુ છતું, અનેક પ્રકારની કુચેષ્ટા કરવા તત્પર રહે છે; સત્ સમાગમરૂપી અમૃત સિંચન વિના મનનું ઠેકાણું પડવું મહા મુશ્કેલ છે, સદ્બોધથી કેળવાઇને લાંબા અભ્યાસે તે પાંસરુ થાય છે.

(૪૨) નિર્મળ શીલવ્રતધારી શ્રાવકને, પરસ્ત્રીથી અને ઉત્તમ ચારિત્રધારી સાધુજનને સર્વ સ્ત્રીથી નિરંતર ચેતતા રહેવાની ખાસ

જરૂર છે. પ્રમાદથી ઘણા પતિત થઇને પાયમાલ થઇ ગયા છે.

(૪૩) જો વિષયભોગમાં નિત્ય જતું મન રોકવામાં આવ્યું નહિં તો; ભસ્મ ચોળવાથી, ધૂમ્રપાન કરવાથી, વસ્ત્ર ત્યાગથી, તેમજ અનેક બીજાં કષ્ટ સહન કરવાથી, કે જપમાળા ફેરવવાથી શું વળવાનું હતું ?

(૪૪) અમૃત જેવા મધુર વચનથી ખળ પુરુષોને જે સન્માર્ગમાં જોડવા ઇચ્છે છે, તે મધના બીંદુથી ખારા સમુદ્રને મીઠો કરવા વાંછે છે; અને નિર્મળ જળથી કોયલાને સાફ કરવા માગે છે, જે બનવું કેવળ અશક્ય છે.

(૪૫) કુમતિને સર્વથા તિલાંજલી દઇને, સુમતિનો સર્વદા આદર કરનાર મહામતિ દુર્ગતિને દળીને સદ્ગતિનો ભાગી થઇ શકે છે.

(૪૬) કમળના પત્ર ઉપર રહેલા જળબિંદુ સમાન જીવિતને ચંચળ લેખીને, વિવિધ વિષય ભોગથી વિરમીને, મોક્ષાર્થી જીવે દાન શીલ તપ અને ભાવના રુપી પવિત્ર ધર્મનું સેવન કરવુંજ ઉચિત છે.

(૪૭) સર્વ સંયોગિક ભાવોને ક્ષણવિનાશી સમજીને, ગુરુ કૃપાથી શીઘ્ર સ્વહિત સાધી લેવા બનતો શ્રમ કરવો વિવેકીને ઉચિત છે.

(૪૮) જેમણે દુર્જનની સંગતિ કરી તેણે ધર્મ સાધનની આ અપૂર્વ તક ખોઇ છે; એમ નિશ્ચયથી સમજવું. દુર્જન દ્વિજિવ્હા સર્પની જેવાજ ઝેરીલા હોવાથી સામાને પણ વિક્રિયા ઉપજાવે છે.

(૪૯) જો પરમાત્મામાં પૂર્ણ પ્રેમ જાગ્યો નહિં યાતો સંપૂર્ણ ગુણાનુરાગ જાગ્યો નહિં, તો વિવિધ શાસ્ત્ર પરિશ્રમ માત્રથી શું વળ્યું ?

(૫૦) મિથ્યાડંબરથી જીવ પરિણામે ભારે દુઃખી થાય છે. મિથ્યા દંભમથી જીવ ઉંધું વેતરવા જાય છે, જેમાં નિશ્ચે હાનિજ પામે છે. એવો દંભ નિશ્ચે દુર્ગતિનુંજ મૂળ છે. માટે સર્વ પ્રકારે કપટવૃત્તિ તજીને સરળ ભાવજ ધારણ કરવો મોક્ષાર્થીને યુક્ત છે. દંભ યુક્ત સર્વ

कष्ट करणी मिथ्या थाय छे. निर्मळ ज्ञान वैराग्य योगेज दंभनी दुष्ठ घाटी उल्लंघी शकाय छे.

(५१) हे हृदय! करुणा समान बीजो कोइ अमृतरस नथी, परद्रोह समान बीजुं हालाहल झेर नथी, सदाचरण समान बीजो कल्पवृक्ष नथी, क्रोध समान कोइ दावानळ नथी, संतोष उपरांत कोइ प्रिय मित्र नथी, अने लोभ समान कोइ शत्रु नथी. आमाथी युक्तायुक्त विचारीने तुजने रुचे ते आदर! हितकारी मार्गज आदरवो ए सद्विवेक पाम्यानुं सार छे.

(५२) हे भाइ जो तुं निर्वाण सुखने वांछतो होय तो परम शान्तिरुपी प्रियानो आदर कर; केमके तेणी शील, श्रद्धा, ध्यान, विवेक, कारुण्य औचित्य, सद्बोध अने सदाचरणादिक अनेक गुण रत्नोथी अलंकृत छे. क्षान्ति—क्षमानुं सम्यग् सेवन कर्या विना कोइ कदापि मोक्षपद पामी शकेज नहिं.

(५३) जे रागद्वेष अने मोहादिक दुष्ट दोषोथी सर्वथा मुक्त थइ, परमात्मपदने प्राप्त थया छे, अने जेमनुं वचन सर्व विरोधरहित छे, जे जगत् त्रयना निष्कारण बंधु छे, एवा परम कारुणिक सर्वज्ञ पुरुषज शरण करवा योग्य छे. एवा आप्त पुरुषना वचन अनुसारे वदनारा सत्पुरुषो पण मोक्षार्थी सज्जनोए सावधानपणे सेवन करवा योग्यज छे.

(५४) ज्यां सुधी सुकृतवडे करेलो पूण्यनो संचय प्होंचे छे, त्या सुधीज सर्व प्रकारनी अनुकूळ सुख सामग्री मळी आवे छे, एम समजीने शुभ धर्मकरणी करवा मन सदोदित रहे तेम प्रमादरहित वर्तवुं.

(५५) ज्यां सुधी दुष्कृत—करेलो पाप संचय प्होंचे छे त्यासुधीज सर्व प्रकारनी प्रतिकुळवाळां कारण मळी आवे छे, एम समजीने पूर्व पापनो क्षय करवा उदित दुःखने समभावे सहन करवा पूर्वक

नवां पाप कर्मथी सदा निवर्तीने शुभ धर्मकरणी करवा सदा साव-धान रहेवुं युक्त छे.

(५६) जेमणे आ अमूल्य मनुष्य जन्म पामीने प्रमादने पर-वश थइ धर्म आराध्यो नहि, तेमज छते धने कृपणताथी तेनो सदु-पयोग कर्यो नहि, एवा विवेक विकळने मोक्षनी प्राप्ति दूरज छे.

(५७) आकाश मध्ये पण कदाच पर्वतशिला मंत्रतंत्रना योगे कदाच लांबो काळ लटकी रहे, दैव अनुकूळ होय तो बे हाथना बळे समुद्र पण तराय अने घोळे दहाडे पण कदाच ग्रह योगथी आका-शमा स्फुट रीते ताराओ देखाय परंतु हिंसाथी कोइनु कदापि कंइ पण कल्याण संभवतुंज नथी.

(५८) जेम ज्योतिश्चक्र रात्री अने दिवसनुं मंडन छे, तेम अखंड शील सतीओ अने यतिओनुं खरेखरुं भूषण छे.

(५९) मायावडे वेश्या, शीळवडे कुल बालिका, न्यायवडे पृथ्वीपती, अने सदाचारवडे यति महात्मा शोभे छे.

(६०) ज्या सुधीमा शरीर व्याधिग्रस्त थइ न जाय, ज्या सुधीमां जरा अवस्थाथी देह जर्जरित थइ न जाय, अने ज्या सुधीमा इंद्रियोनुं बळ घटी न जाय, त्या सुधीमा स्वस्वशक्ति अने योग्यता मुजब पवित्र धर्मनु सेवन करवुं युक्त छे, सद् उद्यमथी सकळ कार्यनी सिद्धि थाय छे; अने प्रमदाचरणथी सकळ कार्यने हानि प्होंचे छे.

(६१) मद्य (Intoxication) विषय (Evil propensities) कषाय (Wrath etc) निद्रा (Idleness) अने किकथा—कपोल कथारुप पाच प्रकारना प्रमाद जीवोने दुरंत व्यथामा पाडे छे.

(६२) जगत्गुरु जिनेश्वर प्रभुना पवित्र वचननुं उल्लंघन करीने स्वच्छंद वर्तन चलाववुं एज प्रमादनु व्यापक लक्षण छे.

(६३) एवा प्रमादना जोरथी चौद पूर्वधर समान समर्थ

પુરુષો પણ સત્ય ચારિત્ર ધર્મથી ચળાયમાન થઇ પતિત થઇ ગયા છે. તો બીજા અલ્પજ્ઞ અને ઓછા સામર્થ્યવાળાઓનું તો કહેવુંજ શું ?

(૬૪) થોડું ઋણ, થોડુ વ્રણ (ચાંદુ) થોડો અગ્નિ અને થોડા કષાયનો પણ કદાપિ વિશ્વાસ કરવો નાહિં. કેમકે તે સર્વ થોડામાંથી વધીને મોટુ ભયંકર રુપ ધારણ કરે છે.

(૬૫) જ્યા સુધી ક્રોધાદિ ચારે કષાયોનો સર્વથા ક્ષય થાય નાહિં, થોડો પણ કષાય શેષ રહ્યો ત્યા સુધી તેનો વિશ્વાસ કરવો નહિં. થોડા પણ અવશિષ્ઠ રહેલા કષાયનો ઉપેક્ષા કરવાથી કાચિત્ ભારે વિષમ પરીણામ આવે છે, માટે તેમનો સર્વથા ક્ષય કરવા સતત્ પ્રયત્ન કરવો યુક્ત છે.

(૬૬) જ્ઞાની પુરુષો ક્રોધાદિક ચારે કષાયને ચંડાળચોકડી તરીકે ઓળખાવે છે, અને તેનાથી સર્વથા અળગા રહેવા આગ્રહ કરે છે.

(૬૭) રાગ અને દ્વેષ એ બંને ક્રોધાદિક ચારે કષાયનું પરિણામ છે, અથવા તો રાગ અને દ્વેષથી ઉક્ત ક્રોધાદિ ચારે કષાયની ઉત્પત્તિ અને વૃદ્ધિ થાય છે. એમ સમજીને રાગદ્વેષનોજ અંત કરવા ઉજમાળ થવું યુક્ત છે. તે બનેનો અંત થયે પૂર્વોક્ત ચારે કષાયનો સ્વતઃ અંત થઇ જાય છે.

(૬૮) રાગદ્વેષ એ બંને મોહથકી પ્રભવે છે, તેથી તે બંને મોહનાજ પુત્ર તરીકે ઓળખાય છે, રાગને કેસરી સિહ જેવો બળવાન કહ્યો છે અને દ્વેષને મદોન્મત હાથી જેવો મસ્ત માન્યો છે. તેથી તેમનો જય કરવા જ્ઞાની પુરુષો મોટા સામર્થ્યની જરુર જોવે છે.

(૬૯) રાગ અને દ્વેષ કેવળ મોહનાજ વિકારભૂત હોવાથી, જ્ઞાની પુરુષો મોહનેજ મારવાનું નિશાન તાકે છે. મોહ સર્વ કર્મમાં અગ્રેસર છે .

(૭૦) મોહનો ક્ષય થયે છતે શેષ સર્વ પરિવાર પણ સ્વતઃ ક્ષય

थाय छे. पण तेनी प्रबळता वडे सर्व शेष परिवारनुं पण प्राबल्य वधतुं जाय छे. दुनीयामां बळवानमां बळवान शत्रु मोहज छे.

(७१) काम, क्रोध, मद मत्सरादिक सर्व मोहनाज परिवार छे, एम समजीने मोह क्षयार्थीए ते सर्वथी चेतता रहेवानी खास जरुर छे.

(७२) हुं अने माहरुं एवा गुप्त मंत्रथी मोहे जगतने आधळुं करी नांख्युं छे. अर्थात् ममताथीज मोहनी वृद्धि थती जाय छे.

(७३) नहिं हु अने नहि मारुं ए मोहनेज मारवानो गुप्त मत्र छे. अर्थात् निर्मलताज मोहने मारवानुं प्रबळ साधन छे.

(७४) आत्मानुं शुद्ध स्वरूप समजवाथी तेमज परभावने बराबर पीछानवाथी मोहनुं जोर पातळुं पडे छे.

(७५) स्फटिक रत्नोनी जेवुं निर्मळ आत्मानुं स्वरुप छे; छता कर्मकळकथी ते मलीनताने पामेलुं होवाथी, जीव तेमां मुग्धताथी मुझाय छे.

(७६) कर्मकलंक दूर थये छते जेवुं ने तेवुं निर्मळ आत्म स्वरुप प्रगटे छे, त्यारे आत्माने तेनो साक्षात् अनुभव थाय छे.

(७७) कर्मकलंकने दूर करवा माटे सर्वज्ञ प्रभुए सम्यग् ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररुपी श्रेष्ट साधन बतावेलुं छे.

(७८) एज साधनथी पूर्वे अनेक महाशयोए आत्म शुद्धि करी छे, वर्तमान काळे साक्षात करे छे, अने आगामी काळे करशे एम समजीने उक्त साधनमा दढतर उद्यम करवो युक्त छे.

(७९) ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य अने उपयोग एज आत्मानुं अनन्य लक्षण छे, एथी भिन्न विपरीत लक्षण अजीव जडनुंज छे.

(८०) स्व लक्षणांकित सद्गुणोमां रमण करवुं ते स्वभाव रमण कहेवाय छे, अने तेथी विपरीत दोषोमा विभाव प्रवृत्ति कहेवाय छे. मोक्षार्थीए विभाव प्रवृत्तीने तजी स्वभाव रमणज करवुं

ઉચિત છે; એમ કરવાથી આત્માનું શુદ્ધ સ્વરુપ પ્રગટ થાય છે.

(૮૧) સમ્યગ્ જ્ઞાન, દર્શન, અને ચારિત્રરુપી રત્નત્રયીનું સંસેવન કરવાથી જેમને અનંત જ્ઞાન, અનત દર્શન, અનંત ચારિત્ર અને અનંત–વીર્યરુપી અનંત ચતુષ્ટયી પ્રાપ્ત થયેલ છે; એવા પરમાત્મપદ પ્રાપ્ત મહાપુરુષોજ મોક્ષાર્થીઓએ ધ્યાવા યોગ્ય છે.

(૮૨) એવા પરમાત્માનુ ધ્યાન કરવાથી મન સ્થિર થાય છે, ઇંદ્રિયો અને કષાયનો જય થાય છે, અને શાત રસની પુષ્ટિથી આત્મા પોતેજ પરમાત્મપદનો અધિકારી થાય છે, ઘનઘાતિ કર્મનો ક્ષય થતાજ પોતે પરમાત્મ રુપ થાય છે, માટે મોક્ષાર્થી જનોએ એવાજ પરમાત્મ પ્રભુનું ધ્યાન કરવું કે જેથી અંતે પોતે પણ તદ્રૂપજ થાય.

(૮૩) એવા પરમાત્મપદ પ્રાપ્ત પુરુષો પણ અવશિષ્ટ અઘાતિ કર્મ ક્ષય થતા સુધી તો શરીરધારીજ હોય છે પણ સંપૂર્ણ કર્મથી મુક્ત થયે છતે તેઓ શરીરમુક્ત–અશરીરી પૂર્ણ સિદ્ધ અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે અને એકજ સમયમા સર્વથા સર્વબંધનમુક્ત છતા લોકના અગ્ર ભાગે જઇ અક્ષય સ્થિતિને ભજે છે.

(૮૪) ત્યાં તેઓ અનંત જ્ઞાનાદિક સ્વરુપ સ્વભાવમાં સ્થિત છતા પરમાનંદમાં મગ્ન રહે છે; જન્મ મરણાદિક સર્વ બંધનથી સર્વથા મુક્તજ રહે છે. એવા સિદ્ધ પરમાત્મા પણ અનંત છે.

(૮૫) એવા સિદ્ધ ભગવાનના સદ્ગુણોનું અનુકરણ કરીને જે તેમનું અભેદપણે ધ્યાન કરે છે તે સ્ફીતાશયો પણ તેવીજ સ્થિતિને અંતે ભજે છે.

(૮૬) એવા ભાવી સિદ્ધ પુરુષો પણ અનંત છે.

(૮૭) ઉત્તમ પ્રકારના આચાર વિચારમા કુશળપણે પોતે પ્રવર્તતા છતાં અન્ય મોક્ષાર્થી વર્ગને પ્રવર્તાવનારા આચાર્ય મહારાજા, પવિત્ર અંગ ઉપાંગરુપ આગમ સિદ્ધાતને સંપૂર્ણ જાણીને અન્ય વિનીત

वर्गने परमार्थ भावे पढावनारा उपाध्याय महाराजा, तथा पवित्र रत्नत्रयीना पालन पूर्वक अन्य आत्मार्थी जनोने यथाशक्ति आलंबन आपनारा मुनिराज महाराजा, सर्वोत्तम लोकोत्तर मार्गना सेवनथी पूर्वोक्त परमात्म पदना पूर्ण अधिकारी होवाथी अनुक्रमे परमात्मपद पामीने संपूर्ण सिद्धरूप थाय छे.

(८८) जेओ संसारीक सुख संयोगोनी अनित्यता विचारीने ससारना सर्व संबंधथी विरक्त थइ, उदासीन भाव धारण करी, परमात्म पंथने अनुसरवा कटिबद्ध थइ, स्व स्वभावमा स्थित थइ, सिद्ध परमात्माने अभेद भावे ध्यावे छे तेओ सर्व दुःखबंधनने छेदीने निश्चे सिद्ध दशाने प्राप्त थाय छे.

(८९) एवा महा पुरुषोनो समागम मोक्षार्थी जीवोने परम आशीर्वादरुप छे एम समजीने सर्व प्रमाद तजी सत्समागमनो बनतो लाभ लेवा चूकवुं नहिं, एवा सत्समागमथी क्षण वारमा अपूर्व लाभ संपादन थाय छे.

(९०) जेमनु मन सत्समागम वडे ज्ञान वैराग्यमां तरबोळ रहे छे तेमनुं सुख तेओज जाणे छे. प्रियाना आलिंगनथी के चंदनना रसथी जेवी शीतळता वळती नथी एवी शीतळता वैराग्य रसनी ल्हेरीयोथी प्रभवे छे जेम वैराग्य रसनी वृद्धि थाय तेम प्रयत्न करवो जरुरनो छे.

(९१) वैराग्य रसथी अनादि काळनो रागादिकनो ताप उपशमे छे, तृष्णा शांत थाय छे अने ममत्वभाव दूर थाय छे, यावत मोहनु जोर नरम पडे छे अने चारित्रमार्गनी पुष्टि थाय छे.

(९२) वैराग्य रसनी अभिवृद्धिथी एवी तो उत्तम उदासीन दशा छाय जाय छे के तेथी सर्वत्र समानभाव वर्ते छे. निंदा स्तुतिमा तेमज शत्रु—मित्रमा समपणुं आववाथी हर्ष शोक थता नथी.

अनुकळ के प्रतिकुळ सर्व संयोगोमां समचित्त पणुं आवे छे तेथी स्वभावनी शुद्धि विशेषे थाय छे.

(९३) वैराग्यनी वृद्धिथी संसारवास कारागृह जेवो भासे छे अने तेथी विरक्त थइ पारमार्थीक सुख माटे यत्न करवा मन दोराय छे.

(९४) शात रसनी पुष्टि थता द्रव्य अने भाव करुणानी वृद्धि थाय छे अने शांत रसना समुद्र एवा वीतराग प्रभुना वचन उपर पूर्ण प्रतीति आवे छे जेथी गमे तेवी कसोटीना वखते पण सत्य मार्गथी चळायमान थवातुं नथी.

(९५) प्रशम रसनी पुष्टि थवाथी अपराधी जीवनुं मनथी पण प्रतिकूळ—अहित चिंतवन करातुं नथी आवी रीते विवेक वर्त-नथी मोक्ष महेलनो मजबूत पायो नंखाय छे अने सकळ धर्मकरणी मोक्ष साधकज थाय छे.

(९६) चिरकाळना लांबा अभ्यासथी शांतवाहिता योगे अहिंसादिक महाव्रतोनी दढता अने सिद्धि थाय छे, जेथी समीपवर्त्ती हिंसक जीवो पण पोतानो क्रूर स्वभाव तजी दइने शात भावने भजे छे अने सातिशयपणाथी देव दानवादिक पण सेवामा हाजर रहे छे. आवो अपूर्व महिमा शांत—वैराग्य रसनोज छे. एम सर्व मोक्षार्थी जनोने विशेषे प्रतीत थाय छे तेथी तेमा तेओ अधिक प्रयत्न करे छे.

(९७) जेमने मन, वचन अने कायामा संपूर्ण स्थिरता प्राप्त थइ छे एवा योगीश्वरो गाममां के अरण्यमा दिवसे के रात्रीमां सरखी रीते स्व स्वभावमांज स्थित रहे छे. कदापि संयम मार्गमां अरति भजताज नथी. सुवर्णनी पेरे विषम संयोगमां चढवाने ते वर्ते छे.

(९८) जेओ फक्त अन्यनेज शिखामण देवामां शूरा छे तेओ खरी रीते पुरुषनी गणनामांज नथी. पण जेओ पोतानेज उत्तम शिखामणो आपीने चारित्र मार्गमा स्थिर करे छे तेओज खरेखर

सत् पुरुषोनी गणनामां गणावा योग्य छे.

(९९) काचनने जेम जेम अग्निमां तपाववामां आवे छे तेम तेम तेनो वान वधतोज जाय छे. शेलडीना साठाने जेम जेम छेद्वामा के पीलवामां आवे छे तेम तेम ते सरस मिष्ट रस समर्पे छे तेमज चंदनने जेम जेम वसवामां के कापवामा आवे छे तेम तेम ते तेना घसनार के कापनारने उत्तम प्रकारनी सुगंध या खुशबो आपे छे. तेवीज रीते सत्पुरुषोने प्राणांत कष्ट पडये छते पण कदापि प्रकृतिनो विकार थतोज नथी. ते तो तेवे वखते उलटी अधिक उजळी थइ आत्म लाभ भणी थाय छे. आवाज पुरुषो जगतमां खरा पुरुषनी गणनामा गणावा योग्य छे.

(१००) योगी पुरुषोने वैराग्य–पुष्टिथी जे अंतरंग सुख थाय छे तेवुं सुख इंद्रादिकने स्वप्नमा पण संभवतुं नथी. केमके इंद्रादिकनुं सुख विषयजन्य होवाथी केवळ बहिरंग–बाह्य–कल्पितज छे.

(१०१) मध्य–उदरनी दुर्बळताथी कृशोदरी–स्त्री शोभे छे, तपोनुष्टानवडे थयेली शरीरनी दुर्बळताथी यति–मुनि शोभे छे, अने मुखनी कृशताथी घोडो शोभे छे, पण तेओ कंइ अभुषणथी शोभतां नथी. सर्व कोइ स्व स्व लक्षण लक्षित छताज शोभे छे.

(१०२) जे स्त्रीना प्रेमाळ वचन सामळीने चंचळ–चित्त थतो नथी तेमज स्त्रीना नेत्र कटाक्षथी पण लगारे संक्षोभ पामतो नथी तेज योगीश्वर रागद्वेष विवर्जित होवाथी जगतमा जयवंतो वर्ते छे.

(१०३) अनेक दोषथी भरेली कामनी कुपित थये छते पण कामातुर जीव तेणीनो आदर करतो जाय छे. एवी कामांधताने धिक्कार पडो.

(१०४) जेनो संयोग थयो छे तेनो वियोग तो अवश्य व्हेलो मोडो थवानोज छे. त्यारे वियोग वखते शा माटे हृदयने

शल्यरुप शोक करवोज जोइये ? तेवा दुःखदायी शोकथी शुं वळवानुं छे ?

(१०५) ममता विना शोक थतो नथी. ज्ञान वैराग्यथी ते ममता घटे छे. सम्यग्ज्ञान या अनुभव ज्ञानथी मोहनी गाठ तूटे छे अने हृदयनुं बळ वधवाथी, घटमा विवेक जागवाथी शोकादिकने अंतरमां पेसवानो अवकाश मळतो नथी.

(१०६) कफना विकारवाळुं नारीनुं मुख क्या अने अमृतथी भरेलो चंद्रमा क्यां ? ते बंने वच्चे महान् अंतर छतां मंदबुद्धि एवा कामी लोको तेमनु ऐक्य सरखापणुंज माने छे.

(१०७) हाथीना काननी माफक चपळ—क्षणवारमां छेह दे एवा विषय भोगने परिणामे माठा विपाक आपवावाळा जाण्या छता तजी न शकाय ए केवळ मोहनीज प्रबळता देखाय छे.

(१०८) एक एक इंद्रियनी विषय लंपटताथी पतंगीया, भमरा, माछला, हाथी अने हरण प्राणांत दुःख पामे छे तो एकी साथे पाचे इंद्रियोने परवश पडेला पामर प्राणीयोनुं तो कहेवुंज शुं ?

(१०९) जेम इंधनथी अग्नि शांत थतो नथी, परंतु ते वृद्धिज पामे छे तेम विषय भोगथी इंद्रियो तृप्त थती नथी, परंतु तेथी तृष्णा वधती जाय छे. अने जेम जेम विशेषे विषय सेवन करवा जीव ललचाय छे तेम तेम अग्निमा आहूतिनी पेरे कामाग्निनी वृद्धि थया करे छे.

(११०) अनुभव ज्ञानीयोए युक्तज कह्युं छे के ज्ञान—वैराग्यज परममित्र छे, काम भोगज परमशत्रु छे, अहिंसाज परम धर्म छे अने नारीज परम जरा छे (केमके जरा विषय लंपटीनो शीघ्र पराभव करे छे.)

(१११) वळी युक्तज कह्युं छे के तृष्णा समान कोइ व्याधि नथी अने संतोष समान कोइ सुख नथी.

(११२) पवित्र ज्ञानामृत या वैराग्य रसथी आत्माने पोषवाथी

तृष्णानो अंत आवे छे, अने संतोष गुणनी प्राप्ति अने वृद्धि थाय छे.

(११३) संतोष सर्व सुखनुं साधन होवाथी मोक्षार्थी जनोए ते अवश्य सेवन करवा योग्य छे, अने लोभ सर्व दुःखनुं मूळ होवाथी अवश्य तजवा योग्य छे. लोभ—बुद्धि तजवाथी संतोष गुण वधे छे.

(११४) क्रोधादि चारे कषाय, संसाररुपी महावृक्षनां उंडा मजबूत मूळ छे. संसारनो अंत करवा इच्छनार मोक्षार्थीए कषायनोज अंत करवो युक्त छे. कषायनो अंत थये छते भवनो अंत थयोज समजवो.

(११५) उपशम भावथी क्रोधने टाळवो, विनयभावथी मानने टाळवो, सरळभावथी माया—कपटनो नाश करवो अने संतोषथी लोभनो नाश करवो. कषायने टाळवानो एज उपाय ज्ञानीयोए बताव्यो छे.

(११६) राग अने द्वेषथी उक्त चारे कषायने पुष्टि मळे छे, माटे वीतराग प्रभुए सर्व कर्मनो जड जेवा राग अने द्वेषनेज मुळथी टाळवा वारंवार उपदेश कर्यो छे. द्वेषथी क्रोध अने मान तथा रागथी माया अने लोभनी वृद्धि थाय छे. राग—द्वेषनो क्षय थवाथी सर्व कषायनो स्वतः क्षय थइ जाय छे माटे मोक्षार्थीए राग द्वेषनो अवश्य क्षय करवो युक्त छे.

(११७) विषय भोगनी लालसाथी राग—द्वेषनी उत्पत्ति अने वृद्धि थाय छे माटे मोक्षार्थीए विषय लालसाने तजीने सहज संतोष गुण सेववो युक्त छे.

(११८) विविध विषयनी लालसावाळुं मलीन मनज दुर्गतिनुं मूळ छे माटे एवा मननेज मारवा महाशयो भार देइने कहे छे.

(११९) मनने मार्याथी इंद्रियो स्वतः मरी जाय छे. इंद्रियोना मरणथी विषयलालसानो अंत आववाथी रागद्वेषरुप कषायनो पण अंत आवे छे, रागद्वेष रुप कषायनो क्षय थवाथी घाति कर्मनो

क्षय थाय छे अने अनंत ज्ञानादिक सहज अनंत चतुष्टयी प्रगट थाय छे. यावत् अवशिष्ट अघाति कर्मनो पण अंत थतांज अज, अविनाशी मोक्ष पदवी प्राप्त थाय छे.

(१२०) मन अने इंद्रियोने वश करीने विषयलालसा तज-वाथी आवो अनुपम लाभ थतो जाणीने कोण हतभाग्य कामभोगनी वांछा करीने आवा श्रेष्ट लाभ थकी चूकशे ? मुमुक्षु जनोने तो विषयवांछा हालाहल झेर जेवी छे.

(१२१) विषयलालसा हालाहल झेरथी पण आकरी छे केमके झेरतो खाधा बादज जीवनुं जोखम करे छे अने विषयनुं चिंतवन करवा मात्रथी चारित्र-प्राणनु जोखम थाय छे. अथवा विष खाधुं छतुं एकज वखत मारे छे पण विषयवांछा तो जीवने भवोभव भटकावे छे.

(१२२) विषयसुखने वैराग्य योगे तजीने फरी वांछनार वमन-भक्षी श्वाननी उपमाने लायक छे.

(१२३) योगमार्गथी पतित थता मुमुक्षुने योग्य आलंबन आपीने पाछो मार्गमां स्थापवामा अनर्गळ लाभ रहेलो छे.

(१२४) जेम राजीमतिये रहनेमिने तथा नागिलाए भवदेव मुनिने तथा कोशाए सिंह गुफावासी साधुने प्रतिबोध आपीने संयम मार्गमां पुनः स्थाप्या, तेम निःस्वार्थ बुद्धिथी मोक्षार्थी जीवने अवसर उचित आलंबन आपनार मोटो लाभ हासल करी शके छे.

(१२५) मोक्षार्थी जनोए हमेशां चढताना दाखला लेवा योग्य छे पण पडताना दाखला लेवा योग्य नथी. चढताना दाखलाथी आत्मामां शूरातन आवे छे, अने पडताना दाखलाथी कायरता आवे छे.

(१२६) चाहे तो पुरुष होय के स्त्री होय पण खरो पुरुषार्थ सेववाथीज ते सद्गति साधी शके छे. पुरुष छता पुरुषार्थहीन होय तो ते पुंगणमां नथी अने स्त्री छता पुरुषार्थयोगे पुंगणनामां गणवा

योग्यज छे. पूर्वे अनेक उत्तम स्त्रीओए पुरुषार्थना बळे परमपदनो अधिकार प्राप्त कर्यो छे. मोक्षार्थी जनोए एवा चढताना दाखला लेवा योग्य छे. तेथी स्वपुरुषार्थ जागृत थाय छे.

(१२७) केवळ पुरुषज परमपदनो अधिकारी छे, स्त्रीने तेवो अधिकार नथी एम बोलनारा पक्षपाती या मिथ्याभाषी छे. खरी वात तो ए छे के जे खरो पुरुषार्थ सेवे छे, ते चाहे तो पुरुष होय यातो स्त्री होय पण अवश्य परमपदना अधिकारी होवाथी परम-पद मोक्ष सुखने साधी शके छे. पुरुषनी पेरे अनेक स्त्रीओए पूर्वे परमपद साधेलुं छे.

(१२८) सम्यग् ज्ञानदर्शन अने चारित्रनुं विधिवत् पालन करवुं ते खरो पुरुषार्थ छे. पुरुषार्थहीन कायर माणसो तेम करी शकतां नथी.

(१२९) अहिंसादिक पाच महाव्रत तथा रात्री भोजननो सर्वथा त्याग करवारुपी छठुं व्रत विवेकबुद्धिथी समजीने ग्रहण करी सिंहनी पेरे शूरवीरपणे ते सर्व व्रतोनुं यथाविधि पालन करवुं तथा अन्य योग्य-अधिकारी स्त्रीपुरुषोने शुद्ध मार्ग समजावी सन्मार्गमां स्थापी तेमने यथोचित सहाय आपवी ते खरो कल्याणनो मार्ग छे.

(१३०) सर्व जीवोने आत्म समान लेखीने कोइने कोइ रीते मनथी, वचनथी के कायाथी हणवो नहिं, हणाववो नहिं के हणनारने संमत थवुं नहि ए प्रथम महाव्रतनुं स्वरुप छे. एम सर्वत्र समजी लेवानुं छे.

(१३१) क्रोधादिक कषायथी, भयथी के हास्यथी जूठ बोलवुं नहिं, जूठ बोलाववुं नहिं तेमज जूठ बोलनारने संमत थवुं नहि ए बीजुं महाव्रत छे. पवित्र शास्त्रना मार्गने मुकीने स्वच्छंदे बोलनार मृषावादीज छे.

(१३२) पवित्र शास्त्रनी आज्ञा विरूद्ध कोइपण चीज स्वामीनी रजा विना लेवी नहिं, लेवडाववी नहिं, तेमज लेनारने संमत थवुं

नहिं. संयमना निर्वाह माटे जे कांइ अशन वसनादिक जरुर होय ते पण शास्त्र आज्ञा मुजब सद्‌गुरुनी संमति लइने अदीनपणे गवेषणा करतां निर्दोष मळे तोज ग्रहण करवुं ए त्रीजुं महाव्रत कह्युं छे.

(१३३) देव, मनुष्य के तिर्यंच संबंधी विषयभोग मन, वचन, के कायाथी सेववा नहिं बीजाने सेवडाववा नहिं अने सेवनारने संमत थवुं नहिं ए चोथु महाव्रत जाणवुं.

(१३४) कंइ पण अल्प मूल्यवाळी के बहु मूल्यवाळी वस्तु उपर मुर्छा राखवी नहिं, संयमने बाधकभूत कोई पण वस्तुनो संग्रह करवो नहिं, कराववो नहिं, तेमज करनारने संमत थवुं नहिं. ए पांचमुं महाव्रत छे.

(१३५) अशन, पाणी, खादिम के स्वादिम रात्री समये (सूर्यअस्त पछी अने सूर्योदय पहेला) सर्वथा वापरवा नहिं, वपराववा नहिं तेमज वापरनारने संमत थवुं नहिं ए छठुं व्रत छे.

(१३६) पूर्वोक्त सर्व महाव्रतोनुं यथाविधि पालन करतां जेम रागद्वेषनी हानी थाय तेम सावधानपणे प्रवृत्ति निवृत्ति मार्ग स्वीकारी तेनो यथार्थ निर्वाह करवो, अने अन्य आत्मार्थीजनोने यथाशक्ति यथावकाश सहाय करवी ते उत्तम प्रकारनो पुरुषार्थ छे.

(१३७) सद्‌गुरुनुं शरण लही तेमनी पवित्र आज्ञानुसारे वर्तनार महाशयोनो सकळ पुरुषार्थ सफळ थाय छे.

(१३८) सद्‌गुरुनी कृपाथी प्राप्त थयेला सद्‌बोधवडे, संयम मार्गमां आवता अपायो सहेलाइथी दूर करी शकाय छे.

(१३९) मुमुक्षुजनोए चंद्रनी पेरे शीतळ स्वभावी, सायरनी जेवा गंभीर, भारंड पंखीनी जेवा प्रमाद रहीत, अने कमळनी पेरे निर्लेप थवुं जोइए. यावत् मेरु पर्वतनी पेरे निश्चळता धारीने सिंहनी जेम शूरवीर थइने वृषभनी पेरे निर्मळ धर्मनी धुरा मुनिजनोए

अवश्य धारवी जोइए.

(१४०) मुमुक्षुजनोए कंचन अने कामनीने दूरथीज तजवां जोइए.

(१४१) मुमुक्षुजनोए राय अने रंकने सरखा लेखवा जोइए, तथा समभावथी तेमने धर्म उपदेश आपवो जोइए.

(१४२) मुमुक्षुजनोए नारीने नागणी समान लेखी तेणीनो संग सर्वथा तजवो जोइए. नारीना संगथी निश्चे कलंक चडे छे.

(१४३) मुमुक्षुजनोए समरस भावमां झीलता थकां शास्त्र अवगाहन कर्या करवु जोइए.

(१४४) मुमुक्षुजनोए अधिकारीनी हितशिक्षा हृदयमां धारीने स्वशक्तिने गोपव्या विना तेनुं यत्नथी पालन करवु जोइए. कोइ रीते अधिकारीनी हितशिक्षानो आनादर नज करवो जोइए.

(१४५) मुमुक्षुजनोए क्षुधादिकनो उदय थये छते गुर्वादिकनी संमती लइने निर्दोष आहार पाणीनी गवेषणा करी, तेवो निर्दोष आहार प्रमुख मळे तो ते अदीनपणे लइने, गुर्वादिकनी समीपे आवीने तेनी अलोचना करी गुर्वादिकनी रजाथी अन्य मुमुक्षु जननी यथायोग्य भक्ति करीने लोलुपतारहित लावेलो आहार संयमना निर्वाह माटे वापरतां मनमां समभाव राखी तेने वखाण्या के वखोड्या विना पवित्र मोक्षना मार्गमा पुनः कटिबद्ध थइने विशेषे उद्यम करवो जोइए.

(१४६) मुमुक्षुजनोनी शास्त्र आज्ञा मुजब वर्तीने करवामां आवती माधुकरी भिक्षाने ज्ञानी पुरुषो ' सर्व संपत् करी ' कहे छे.

(१४७) मुमुक्षुजनोनी शास्त्र आज्ञा विरुद्ध वर्तीने करवामां आवती भिक्षाने ज्ञानी पुरुषो ' बलहरणी ' कहीने बोलावे छे.

(१४८) केवळ अनाथ अशरण एवा आंधळा पांगळां विगेरे दीनजनोनी भिक्षाने ज्ञानी पुरुषो ' वृत्ति भिक्षा ' कहीने बोलावे छे.

(१४९) मुमुक्षुजनोए शास्त्र विरुद्ध मार्गे वर्त्तता थती 'बळ-हरणी' भिक्षाने सर्वथा तजीने शास्त्र विहित मार्गे वर्तीने 'सर्व संपत्करी, भिक्षानोज खप करवो युक्त छे.

(१५०) मुमुक्षुजनोए अकृत, अकारित अने असंकल्पितज आहार गवेषीने ग्रहण करवो जोइए. पोते नहि करेलो, नहि करावेलो, तेमज पोताने माटे खास संकल्पीने गृहस्थादिके नहि करेलो के करावेलोज आहार मुमुक्षुजनोने कल्पे छे. तेवो पण आहार गवेषणा करता मळी शके छे.

(१५१) यति धर्म याने मुमुक्षु मार्ग अति दुष्कर कह्यो छे; केमके तेमां एवा निर्दोष आहारथीज संयम निर्वाह करवानो कह्यो छे.

(१५२) गृहस्थ जनो पोताना माटे अथवा पोताना कुटुंबने माटे अन्न पानादिक नीपजावता होय तेमा एवो शुभ विचार करे के आपणे माटे करवामा आवता आ अन्न पाणीमाथी कदाच सारा योगे कोइ महात्माना पात्रमा थोडुं पण अपाशे तो मोटो लाभ थशे. आवो शुभ विचार गृहस्थ जनोने हितकारीज छे.

(१५३) एवा शुभ चिंतन युक्त गृहस्थोए पोताने माटे के पोताना कुटुंबने माटे निपजावेला अन्न पाणी विगेरे मुमुक्षुमुनीने लेवामां बाधक नथी.

(१५४) निर्दोष आहार लावी विधिवत् ते वापरनार मुनि संयमनी शुद्धि करे शके छे. तेथी उलटी रीते वर्तता संयमनी विराधना थाय छे.

(१५५) मुमुक्षुजनोए शब्द, रुप, रस, गंध अने स्पर्श संबंधी सर्व विषयआसक्तिथी सावधपणे दूर रहेवुं युक्त छे.

(१५६) मुमुक्षुजनोए विषय वासनानेज हठाववा यत्न करवो जोइए.

(१५७) मुमुक्षुजनोए गृहस्थोनो परिचय तजीने ब्रह्मचर्यनी खूब

पुष्टि थाय तेम पवित्र ज्ञान ध्याननो सतत अभ्यास करवो जोइए.

(१५८) मुमुक्षुजनोए स्त्री, पशु, पंडग विनानुं संयमने अनुकूळ स्थानज रहेवाने पसंद करवुं जोइए.

(१५९) मुमुक्षुजनोए कामविकार पेदा थाय एवी कोइ पण चेष्टा करवी न जोइए. स्त्री कथा, स्त्री शय्या, स्त्रीनां अंगोपांगनुं निरीक्षण, स्त्री समीपे स्थिति, पूर्वकरेली कामक्रीडानुं स्मरण, स्निग्ध भोजन तथा प्रमाणातिरिक्त भोजन, तथा शरीर विभूषादिक सर्वे तजवा जोइए.

(१६०) मुमुक्षुजनोए पूर्वे थयेला महा पुरुषोना पवित्र चरित्रने जाणीने तेमनुं बनतुं अनुकरण करवाने सदा सावधान रहेवुं जोइए.

(१६१) मुमुक्षुजनोए गमे तेवा संयोगोमा संयमथी चलायमान थवुं न जोइए. देव, मनुष्य के तिर्यंचे करेला सर्वे अनुकूळ के प्रतिकूळ उपसर्ग परीषहोने अदीनपणे आत्म कल्याणार्थे सहन करवा जोइए.

(१६२) मुमुक्षुजनोए मार्गमा चालता धुंसरा प्रमाण भूमीने आगळ जोतां कोइ पण न्हाना के मोटा जीवने जोखम न पहोंचे तेम करुणा नजरथी तपासीने चालवुं जोइए.

(१६३) मुमुक्षुजनोए जरुर पडतु बोलता कोइने अप्रीति न उपजे एवुं हित, मित, अने सत्य, धर्मने बाधक न थाय तेवुं भाषण करवु जोइए.

(१६४) मुमुक्षुजनोए संयमना निर्वाह माटे जरुर पडये छते ४२ दोष रहित आहार पाणी विगेरे गुर्वादिकनी संमतिथी लावीने विधिवत् वापरवा जोइए.

(१६५) मुमुक्षुजनोए कोइपण वस्तु लेतां या मूकतां कोइ पण जीवनी विराधना थइ न जाय तेम समाळीने ते वस्तु लेवी मूकवी जोइए.

(१६६) मुमुक्षु जनोए लघुनीति, वडीनीति विगेरे शरीरना

सर्व मळनो त्याग निर्जीव स्थानमां जइने विधिवत् करवो जोइए.

(१६७) मुमुक्षुजनोए मुख्यपणे मनने गोपवीने धर्म ध्यानमां जोडावुं जोइए. जेम बने तेम तेने विविध विकल्प जाळथी मुक्त राखवुं जोइए.

(१६८) मुमुक्षुजनोए मुख्यपणे तथाप्रकारना कारणविना मौनज धारण करी रहेवुंज जोइए. जरूर जाणता सत्य निर्दोषज भाषण करवुं जोइए.

(१६९) मुमुक्षुजनोए मुख्यपणे संयमार्थे जवा आववानी जरुर न होय तो कायाने काचबानी पेरे गोपवी राखवी जोइए. स्थिर आसन करीने पवित्र ज्ञान ध्याननोज अभ्यास करवो जोइए.

(१७०) मुमुक्षुजनोए चालवानी, बेसवानी, उठवानी, सुवानी खावानी, पीवानी के बोलवानी जे जे क्रिया करवी पडे ते ते कोइ जीवने इजा न थाय तेमज संभाळथीज करवी जोइए.

(१७१) मुमुक्षुजनोए रसगृद्ध नहि थतां परिमितभोजी थवुं जोइए.

(१७२ मुमुक्षुजनोए संयम अनुष्ठानने समजपूर्वक प्रमाद रहित सेवीने अन्य मुमुक्षुजनोने यथाशक्ति संयममा सहायभूत थवुं जोइए. एक क्षण मात्र पण कल्याणार्थीए प्रमाद करवो न जोइए.

(१७३) प्रीय मनोहर अने स्वाधीन भोगने जे जाणी जोइने तजे छे, तेज खरो त्यागी कहेवाय छे.

(१७४) वस्त्र, गंध, माल्य, अलंकार तथा स्त्री शय्यादिक नहि मळवा मात्रथी भोगवतो नथी, पण मनथी तो तेवा विषयमां सार मानीने मग्न रहे छे ते त्यागी कहेवाय नही.

(१७५) जो जळमां मच्छनी पद पंक्ति मालूम पडे के आकाशमां पंखीनी पद पंक्ति जणाय, तोज स्त्रीना गहन चरित्रनी समज पडी शके; तात्पर्य के स्त्रीना चरित्रनो पार पामवो अशक्य छे.

(१७६) प्रियालापथी कोइनी साथ वात करती कामनी कटाक्ष-

वडे कोइ अन्यने सानमां समजावती होय तेम वळी हृदयथी तो कोइ बीजानु ध्यान [चिंतवन] करती होय, एवो स्त्रीनी चंचळताने धिक्कार पडो. स्त्रीओ प्रायः कपटनीज पेटी होय छे.

(१७७) जो मन वैराग्यना रंगथी रंगायलुं न होय तो दान, शील, अने तप केवळ कष्टरुपज थाय छे. वैराग्य युक्त करेली सर्व धर्म करणी कल्याणकारी थाय छे. माटे जेम बने तेम वैराग्य भावनी वृद्धि करवी युक्त छे. ते विना अलुणा धान्यनी पेरे धर्मकरणीमां लेहजत आवती नथी, वैराग्य योगे तेमा भारे मीठाश आवे छे.

(१७८) अभिनव अध्यात्मिक शास्त्रो वांचवाथी सहज वैराग्यनी वृद्धि थाय छे.

(१७९) मैत्री, मुदिता, करुणा अने मध्यस्थ एवी चार भावनाओनुं संयमना कामीए अवश्य सेवन करवुं जोइए.

(१८०) जगतना सर्व जंतुओ आपणा मित्र छे, कोइ पण आपणा शत्रु नथी, ते सर्व सुखी थाओ, कोइ दुःखी न थाओ, सर्वे सुखना मार्गे चालो एवी मतिने मैत्रीभावना कहे छे.

(१८१) सद्गुणीना सद्गुणो जोइने चित्तमा राजी थवु. जेम चद्रने देखीने चकोर राजी थाय छे, अथवा मेघनो गर्जारव सांभळीने मोर राजी थाय छे, तेम गुणीने देखी प्रमुदित थवुं, अंतःकरणमां आनंदनी उर्मीओ उठे तेनुं नाम मुदिता भावना कहेवाय छे.

(१८२) कोइ पण दुःखीने देखी दयार्द्र दिलथी शक्ति अनुसारे तेने सहाय करवी तेमज धर्म कार्यमां सीदाता साधर्मी भाइने योग्य आलंवन आपवुं तेनुं नाम करुणा भावना कहेवाय छे.

(१८३) जेने कोइ पण प्रकारे हितोपदेश असर करी शके नहिं एवा अत्यंत कठोर मनवाळा जीव उपर पण द्वेष नहि करतां तेवाथी दूरज रहेवुं तेनुं नाम मध्यस्थ भावना कहेवाय छे.

(१८४) बीजी पण अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्य-त्व, अशुचित्व, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक स्वभाव, बोधि दुर्लभ अने स्वतत्वनुं चिंतनरुप द्वादश अनुप्रेक्षा,—भावना कही छे.

(१८५) भावना भवनाशिनी अर्थात् आवी उत्तम भावनाथी भव संततिनो क्षय थइ जाय छे, अने शांतरसनी वृद्धिथी चित्तनी शांति—प्रसन्नता थाय छे. माटे मोक्षार्थी जनोए अवश्य उक्त भावना-ओनो अभ्यास कर्या करवो युक्त छे.

(१८६) गमे तेटली कळा प्राप्त थाय, गमे तेवो आकरो तप तपाय, अथवा निर्मळ कीर्ति प्रसरे परंतु अंतरमा विवेक कळा जो न प्रगटी तो ते सर्व निष्फळज छे. विवेक कळाथी ते सर्वेनी सफळता छे.

(१८७) विवेक ए एक अभिनव सूर्य या अभिनव नेत्र छे. जेथी अंतरमा वस्तु तत्त्वनुं यथार्थ दर्शन थाय एवुं अजवाळुं थाय छे; माटे बीजी बधी जजाळ तजीने केवळ विवेककळा माटे उद्यम करवो युक्त छे.

(१८८) सत् समागम योगे हितोपदेश सांभळवाथी या तो आप्त प्रणीत शास्त्रना चिर परिचयथी विवेक प्रगटे छे.

(१८९) विवेकवडे सत्यासत्यनो निर्णय करी शकाय छे. ते विना हिताहित, कृत्याकृत्य, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय, उचितानुचित के गुणदोषनी खात्री थइ शकती नथी. विवेक वडेज असत् वस्तुनो त्याग करीने सद् वस्तुनो स्वीकार करी शकाय छे.

(१९०) जेम निर्मळ अरिसामा सामी वस्तुनुं बराबर प्रतिबिंब पडी रहे छे. तेम निर्मळ विवेकयुक्त हृदयमा वस्तुनुं यथार्थ भान थाय छे. जेम सूक्ष्म दर्शक यंत्रथी सुक्ष्म वस्तु सहेलाइथी देखी श-काय छे, तेम विवेकना अधिकाधिक अभ्यासथी सुक्ष्ममां सुक्ष्म ने दुरमां दुर रहेला पदार्थनुं यथार्थ भान थइ शके छे; माटेज ज्ञानी

पुरुषो विवेक रहीतने पशु माने छे.

(१९१) विवेकी पुरुष आ मनुष्य भवना क्षणने पण लाखेणो (लक्ष मुल्य अथवा अमुल्य) लेखे छे.

(१९२) जेम राजहंस पक्षी क्षीर नीरने जुदां करीने क्षीर मात्र ग्रहे छे, तेम विवेकी पुरुष दोष मात्रने तजी गुण मात्रने ग्रहण करेछे.

(२९३) मननी क्षुद्रता (पारका छिद्र जोवानी बुद्धि) मटवा-थीज गुण ग्राहकता आवे छे. गुण गुणिनो योग्य आदरसत्कार करवारुप विनयगुणथी गुण ग्राहकता वधती जाय छे.

(१९४) विनय सर्व गुणोनुं वशीकरण छे. भक्ति या बाह्यसेवा, हृदय प्रेम या बहुमान, सद्गुणनी स्तुति, अवगुणने ढांकवा अने अवज्ञा, आशातना, हेलना, निंदा, के खिसाथी दूर रहेवुं एवा विनयना मुख्य पाच प्रकार छे.

(१९५) जेम अणधोयेला मेला वस्त्र उपर मेल चडी शकतो नथी, अथवा विषम भुमिमां चित्र उठी शकतुं नथी, तेम विनयादि गुण हीनने सत्य धर्मनी प्राप्ती थइ शकती नथी.

(१९६) विनयादि सद्गुण संपन्नने सहेजे धर्मनी प्राप्ती थइ शके छे.

(१९७) विनयादि शून्यने विद्यादिक उलटी अनर्थकारी थाय छे. माटे प्रथम विनयादिकनोज अभ्यास करवो योग्य छे.

(१९८) धर्मनी योग्यता—पात्रता प्राप्त करवी ए प्रथम अवश्य-नुं छे. तृण थकी गायने दुध थाय छे अने दुध थकी सर्पने झेर थाय छे. ए उपरथीज पात्रापात्रानो विवेक धारवो प्रगट समजाय छे.

(१९९) धर्मनी योग्यता मेळववा माटे नीचेना २१ गुणोनो खूब अभ्यास करवो खास जरुरनो छे.

१ अक्षुद्रता—गंभीरता—गुणग्राहकता. २ साम्यता—प्रसन्नता. ३ निरोगता—अंग सौष्टव—सुंदराकृति. ४ जनप्रियता—लोकप्रियता. ५ अ-

क्रुरता—मननी कोमळता—नरमाश. ६ भीरुता—पापथी या अपवादथी बीवापणुं. ७ अशठता—निष्कपटीपणुं—सरलता. ८ दाक्षिण्यता मोटानी अनुज्ञा पाळवी ते. ९ लज्जाळुता—मर्यादा शीलपणुं—माजा. १० दयालुता—करुणा. ११ समदृष्टि—मध्यस्थता—निष्पक्षपातपणुं. १२ गुण रागीपणुं १३ सत्यवादीपणुं—सत्यप्रियता. १४ सुपक्षता—धर्मीकुटुंब होवापणु. १५ दीर्घ दर्शिता—लांबी नजर पहोंचाडवापणुं. १६ विशेषज्ञता—लाबी समज. १७ वृद्धानुसारीपणुं शिष्टानुसारिता. १८ विनीतता—नम्रता. १९ कृतज्ञता—कर्या गुणनुं जाणपणुं. २० परोपकारता—परहितैषिता. २१ लब्धलक्षता — कार्यदक्षता— सुनिपुणता, कळाकौशल्य. आ २१ गुणोनुं विस्तार वर्णन धर्म रत्नप्रकरणादि अनेक ग्रथोमां करेलु छे. त्याथी समजीने वर्तनमां मुकवुं.

(२००) पुर्वोक्त गुणना अभ्यास रहित योग्यता विनाज धर्मनी प्राप्ती थवी वंध्यापुत्र अथवा शशशृंगनी पेरे अशक्य छे.

(२०१) योग्य जीवने पण सत्य धर्मनी प्राप्ति बहुधा श्रमण निर्ग्रथद्वारा हितोपदेश सामळवाथीज थाय छे. माटे योग्य जीवोने पण सत् समागमनी खास अपेक्षा रहेछेज.

(२०२) हजारो ग्रंथ वाचवाथी सार न मळे एवो सरस सार क्षण मात्रमां सत्समागमथी भाग्य योगे मळी शके छे.

(२०३) दुर्जनो छते योगे तेवा लाभथी कमनशीबज रहे छे.

(२०४) सज्जनोने तो दुर्जनोनी हैयातीथी अभिनव जागृति रहे छे.

(२०५) दुर्जनो सज्जनोना निष्कारण शत्रु छे. पण सज्जनो तो समस्त जगतना निष्कारण मित्र छे.

(२०६) दुर्जनोने द्विजीह सर्प जेवा कह्या छे ते यथार्थज छे. केमके ते एकांत हितकारी सज्जनने पण काटे छे.

(२०७) सज्जनो तो एवा खारीला-झेरीला दुर्जनोने पण दुहववा इच्छता नथी एज तेमनु उदार आशयपणुं सूचवे छे.

(२०८) कागडाने के कोयलाने गमे तेटलो धोयो होय तोपण ते तेनी काळाश तजेज नहि तेम दुर्जनने पण गमे तेटलुं ज्ञान आपो पण ते कदापि कुटिलता तजवानो नहि.

(२०९) सज्जनने तो गमे ते तेटलुं संतापशो तोपण ते तेमनी सज्जनता कदापि तजशेज नहि.

(२१०) सज्जनज सत्य धर्मने लायक छे. माटे बीजी धमाल तजी दइने केवल सज्जनताज आदरवा प्रयत्न करो.

(२११) वीतराग समान कोइ मोक्षदाता देव नथी.

(२१२) निर्ग्रंथ साधु समान कोइ सन्मार्ग दर्शक साथी नथी.

(२१३) शुद्ध अहिंसा समान कोइ भवदु:खवारक औषध नथी.

(२१४) आत्माना सहज गुणोनो लोप करे एवा रागद्वेष अने मोहादिक दोषोने सेववा समान कोइ प्रबळ हिंसा नथी.

(२१५) आत्माना ज्ञान दर्शन अने चारित्रादिक सद्गुणोने साचवी राखवा अथवा ते सहज गुणोनुं संरक्षण करवुं तेना समान कोइ शुद्ध अहिंसा नथी.

(२१६) आत्महिंसा तज्या विना कदापि आत्मदया पाळी शकवाना नथी. रागद्वेष अने मोह-ममतादिक दुष्ट दोषोने तजीने सहज-आत्म गुणमा मग्न रहेवुं एज खरी आत्म दया छे. बीजी औपचारिक जीवदया पाळवानो पण परमार्थ रागादि दुष्ट दोषोने आवता वारवानो अने ज्ञान दर्शन अने चारित्रादिक सद्गुणोने पोषवानोज छे.

(२२७) सत्यादिक महाव्रतो पाळवानो पण एज महान् उद्देश छे. यावत् सकळ क्रियानुष्ठाननो उंडो हेतु शुद्ध अहिंसा व्रतनी

દઢતા કરવાનોજ છે.

(२२८) એવી શુદ્ધ સમજ દીલમા ધારી સંયમક્રિયામાં સાવધાન રહેનારા યોગીશ્વરો અવશ્ય આત્મહિત સાધી શકે છે.

(२२९) એવી શુદ્ધ સમજ દીલમાં ધાર્યા વિના કેવળ અંધશ્રદ્ધાથી ક્રિયાકાડને કરનારા સાધુઓ શીઘ્ર સ્વહિત સાધી શકતા નથી.

(२३०) શુદ્ધ સમજવાળા જ્ઞાની પુરુષોનો પૂર્ણ શ્રદ્ધાથી આશ્રય લહી સંયમ પાળનારા પ્રમાદ રહિત સાધુઓ પણ અવશ્ય આત્મહિત સાધી શકે છે. કેમકે તેમના નિયામક (નિયતા–નાયક) શ્રેષ્ઠ છે.

(२३१) સુવિહિત સાધુજનો મોક્ષમાર્ગના ખરા સારથી છે એવી શુદ્ધ શ્રદ્ધાથી મોક્ષાર્થી ભવ્ય જનોએ, તેમનુ દઢ આલંબન કરવું અને તેમની લગારે પણ અવજ્ઞા કરવી નહિ.

(२३२) ગ્રહણ કરેલાં વ્રત યા મહાવ્રતને અખંડ પાળનાર સમાન કોઇ ભાગ્યશાળી નથી, તેનુંજ જીવિત સફળ છે.

(२३३) ગ્રહણ કરેલા વ્રત કે મહાવ્રતને ખંડીને જે જીવેછે તેની સમાન કોઇ મંદભાગ્ય નથી. કેમકે તેવા જીવિત કરતા તો ગ્રહણ કરેલા વ્રત કે મહાવ્રતને અખંડ રાખીને મરવુંજ સારું છે.

(२३४) જેને હિતકારી વચનો કહેવામાં આવતાં છતા બિલકુલ કાને ધારતો નથી અને નહિ સાંભળ્યા જેવું કરે છે તેને છતે કાને બ્હેરોજ લેખવો યુક્ત છે. કેમકે તે શ્રોત્રને સફળ કરી શકતો નથી.

(२३५) જે જાણી જોઈને ખરો રસ્તો તજીને ખોટે માર્ગે ચાલે છે, તે છતી આખે આંધળો છે એમ સમજવું.

(२३६) જે અવસર ઉચિત પ્રિય વચન બોલી સામાનું સમાધાન કરતો નથી તે છતે મુખે મૂંગો છે, એમ શાણા માણસે સમજવું.

(२३७) મોક્ષાર્થી જનોએ પ્રથમપદે આદરવા યોગ્ય સદ્ગુરુનું વચનજ છે.

(२३८) जन्म मरणना दुःखनो अंत थाय एवो उपाय विचक्षण पुरुषे शीघ्र करवो युक्त छे केमके ते विना कदापि तत्त्वथी शांति थती नथी.

(२३९) तत्त्वज्ञान पूर्वक संयमानुष्ठान सेववाथीज भवनो अंत थाय छे.

(२४०) परभव जता संबल मात्र धर्मनुंज छे माटे तेनो विशेषे खप करवो ते विनाज जीव दुःखनी परंपराने पामे छे.

(२४१) जेनुं मन शुद्ध—निर्मळ छे तेज खरो पवित्र छे एम ज्ञानीयो माने छे.

(२४२) जेना अंतर—घटमा विवेक प्रगट्यो छे, तेज खरा पंडित छे एम मानवु.

(२४३) सद्गुरुनी सुखकारी सेवाने बदले अवज्ञा करवी एज खरुं विष छे.

(२४४) सदा स्वपरहित साधवा उजमाळ रहेवु एज मनुष्य जन्मनुं खरुं फळ छे.

(२४५) जीवने बेभान करी देणार स्नेह रागज खरी मदिरा छे एम समजवु.

(२४६) धोळे दहाडे धाड पाडीने धर्मधनने लूटनारा विषयोज खरा चोर छे.

(२४७) जन्म मरणना अत्यंत कटुक फळने देनारी तृष्णाज खरी भववेली छे.

(२४८) अनेक प्रकारनी आपत्तिने आपनार प्रमाद समान कोइ शत्रु नथी.

(२४९) मरण समान कोइ भय नथी अने तेथी मुक्त करनार वैराग्य समान कोइ मीत्र नथी, विषयवासना जेथी नाबुद थाय तेज खरो वैराग्य जाणवो.

(२५०) विषयलंपट—कामांधसमान कोइ अंध नथी केमके ते विवेक शून्य होय छे.

(२५१) स्त्रीना नेत्र कटाक्षथी जे न डगे तेज खरो शूरवीर छे.

(२५२) संत पुरुषोना सदुपदेश समान बीजुं अमृत नथी. केमके तेथी भव ताप उपशांत थवाथी जन्म मरणनां अनंत दुःखोनो अंत आवे छे.

(२५३) दीनतानो त्याग करवा समान बीजो गुरुतानो सीधो रस्तो नथी.

(२५४) स्त्रीनां गहन चरित्रथी न छेतराय तेना जेवो कोइ चतुर नथी.

(२५५) असंतोषी समान कोइ दुःखी नथी केमके ते मंमण शेठनी जेवो दुःखी रहे छे.

(२५६) पारकी याचना करवा उपरांत कोइ मोटुं लघुतानुं कारण नथी.

(२५७)निर्दोष—निष्पाप वृत्तिसमान बीजुं सारुं जीवितनुं फळ नथी.

(२५८) बुद्धिबळ छता विद्याभ्यास नहि करवा समान बीजी कोइ जडता नथी.

(२५९) विवेकसमान जागृति अने मूढता समान निद्रा नथी.

(२६०) चंद्रनी पेरे भव्य लोकने खरी शीतळता करनार आ कलिकाळमा फक्त सज्जनोज छे.

(२६१) परवशता नर्कनी पेरे प्राणीओने पीडाकारी छे.

(२६२) संयम या निवृति समान कोइ सुख नथी.

(२६३) जेथी आत्माने हित थाय तेवुज वचन वदवुं ते सत्य छे पण जेथी उलटुं अहित थाय एवुं वचन विचार्या विना वदवुं ते सत्य होय तो पण असत्यज समजवुं. आथीज अंधने पण अंध कहेवानो शास्त्रमां निषेध करेलो छे. (इति शम्)

धर्मनी दश शिक्षा

१ क्षमा–अपराधी जीवोनुं अंतःकरणथी पण अहित नहि इच्छतां जेम स्वपरहित थइ शके तेम सहनशीलता पूर्वक उचित प्रवृत्ति या निवृत्ति करवी अने जिनेश्वर प्रभुना पवित्र वचननो तेवो मर्म समजीने अथवा आत्मानो एवोज धर्म समजीने सहज सहनशीलता धारवी ते.

२ मृदुता - जातिमद, कुळमद, बळमद, प्रज्ञामद, तपमद, रुपमद, लाभमद अने ऐश्वर्यमदनुं स्वरूप सारी रीते समजी तेथी थती हानिने विचारी ते संबंधी मिथ्याभिमान तजीने नम्रता याने लघुता धारण करवी. गुणगुणीनो द्रव्य भावथी विनय साचववो, तेमनी उचित सेवा चाकरी करवी तेमनुं अपमान करवाथी सदंतर दूर रहेवुं विगेरे नम्रताना नियमो ध्यानमा राखीने स्वपरनी परमार्थथी उन्नति थाय एवो सतत ख्याल राखी रहेवुं ते.

३ सरलता सर्व प्रकारनी माया तजी निष्कपट थइ रहेणी कहेणी एक सरखी पवित्र राखवी. जेम मन, वचन अने कायानी पवित्रता सचवाय, अन्य जनोने सत्यनी प्रतीति थाय तेम प्रयत्नथी स्व उपयोग साध्य राखीने व्यवहार करवो ते.

४ संतोष विषय तृष्णानो त्याग करी, ते माटे थता संकल्प विकल्पो शमावी दइ, तुष्ट वृत्तिने धारण करी, स्थिर चित्तथी सम्यग् दर्शन ज्ञान अने चारित्ररुप रत्नत्रयीनुं सेवन करवुं तेमज सर्व पाप उपाधिथी निवर्तवुं ते.

५ तप मन अने इंद्रियोना विकार दूर करवा तेमज पूर्व कर्मनो क्षय करवा समता पूर्वक बाह्य अने अभ्यंतर तपनुं सेवन करवुं. उपवास आदिक बाह्य तप समजीने समता पूर्वक करवाथी ज्ञान ध्यान

प्रमुख अभ्यंतर तपनी पुष्टिने माटेज थाय छे. तथी ते अवश्य करवा योग्यज छे. तपथी आत्मा कंचनना जेवो निर्मळ थाय छे.

६. संयम——विषय कषायादिक प्रमादमां प्रवर्तता आत्माने नियममां राखवा यम नियमनुं पालन करवुं, इंद्रियोनुं दमन करवुं, कषायनो त्याग करवो अने मन वचन कायाने बनता काबुमां राखवा ते.

७ सत्य——सहुने प्रिय अने हितकर थाय एवुज वचन विचारीने अवसर उचित बोलवु, जेथी धर्मने कोइ रीते बाधक न आवे ते.

८ शौच——मन वचन अने कायानी पवित्रता जाळववाने बनतो प्रयत्न सेव्या करवो. प्रमाणिकपणेज वर्तवुं, सर्व जीवने आत्म समान लेखवा. कोइनी साथे अंशमा पण वैर विरोध राखवो नहि. सहुने मित्रवत् लेखवा, तेमने बनती सहाय आपवी अने गुणवंतने देखी मनमा प्रमुदित थवुं, पापी उपर पण द्वेष न करवो ते.

९ निष्परिग्रहता——जेथी मूर्छा उत्पन्न थाय एवी कोइपण वस्तुनो संग्रह नहि करवो. परिग्रहने अनर्थकारी जाणी तेनाथी दूर रहेवुं, कमलनी पेरे निर्लेपपणु धारवुं. परस्पृहाने तजी निस्पृहपणुं आदरवु.

१० ब्रह्मचर्य——निर्मळ मन वचन अने कायाथी किंपाकनी जेवा परिणामे दुःखदायक विषयरसनो त्याग करी निर्विषयपणुं याने निर्विकारपणुं आदरवुं. विवेक रहित पशुना जेवी कामक्रीडा तजी सुशीळपणुं सेववुं. लज्जाहीन एवी मैथुन क्रीडानो त्याग करी आत्मरति धारवी ते.

आ दशविध धर्मशिक्षानुं शुद्ध श्रद्धापूर्वक सेवन करवाथी कोइ पण जीवनुं सहजमां कल्याण थइ शके छे. माटे तेनुं यथाविध सेवन करवानी अति आवश्यकता छे. सम्यग्दर्शन ज्ञान अने चारित्र एज मोक्षनो खरो मार्ग छे.

બોધકારક દ્રષ્ટાંત (કથા) સંગ્રહ

કંબલ અને સંબલ વૃષભની કથા.

મથુરા નગરીમાં જિનદાસ નામે શેઠ રહેતા હતા. તે સમકીતધારી શ્રાવક હતા અને વ્રત પચ્ચખાણાદિ કરવામાં હમેશાં તત્પર રહેતા. ધર્મ નિયમ ચુકે નહીં એવા તે જિનદાસ શેઠને તે ગામમાં રહેનાર આહીર સાથે નાતો હતો; તેથી એક દીવસ આહીર લોકોએ પોતાના વીવાહ કાર્યના શુભ પ્રસંગને લીધે તે શેઠને ત્યાં કંબલ અને સંબલ નામના વૃષભ ભેટ તરીકે આપ્યા; શેઠને વ્રત હોવાથી તે ચોપગાં જાનવરનો ઉપયોગ નહોતો તેથી તેમણે તે લેવાને ના પાડી. પરંતુ આહીર લોકો શેઠના ઉપકાર અને અનુરાગને લીધે શેઠે ના પાડયા છતા પણ ઘણો આગ્રહ કરી શેઠને ત્યા એ બે બળદને બાંધી ગયા. શેઠે આ સુકોમળ બળદને જોઇ વિચાર્યુ કે એમને કોઈ ખેતીવાડી અગર બીજી મેહેનતમા નાખશે તેથી તે દુઃખી થશે માટે અહીં બાંધ્યા બેસી રહી ખાશે પીશે. આવી અપેક્ષાએ શેઠે તે બળદ રાખ્યા. તેમને દરરોજ પ્રાસુક આહાર તથા જળ મુકતા. શેઠની વૃત્તી અને ધર્મ રીતી નીતી જોઇ બળદોને જાતીસ્મરણજ્ઞાન થયું તેથી તેમણે પોતાનો પુર્વ ભવ દીઠો અને શ્રાવક ધર્મી થયા. શ્રાવકની પેઠે અષ્ટમ્યાદિક પુણ્યતીથીઓને દીવસે તેઓ પણ ઉપવાસ કરવા લાગ્યા. કેટલાક દીવસ આ પ્રમાણે ગયા પછી એક વખત તે જિનદાસશેઠનો કોઇક મિત્ર ભંડિરમિત્ર નામના યક્ષની યાત્રા કરવા જવાનો હશે, તેણે આવીને શેઠની પાસે ગાડે જોડવાને માટે બળદ માગ્યા. આ વખતે શેઠ પોસામાં હતા તેથી કાંઇ પણ બોલ્યા નહીં. તેથી તે યાત્રાયે જનાર શેઠના મીત્રે બાહાર બાંધેલા બળદ છોડી લીધા અને તેને ઘેર લાવીને ગાડે જોતર્યા. બળદ સુકો-

मळ अने कोइ दीवस गाडामां जोडाएला नहीं तेथी ते यक्षना देवळ सुधी महा संकटे पोहोच्या अने पाछा आव्या त्यारे तो ते लोहीं लुहाण थइ गया हता. केमके तेमनी चालवानी—दोडवानी शक्ती नही रही तो पण ते शेठना मित्रे वगर समजे बळदने खुब हांक्या हता. आथी ते बंने बळदोना गात्र नरम थई गया हतां तेवी अवस्थामां पाछा ज्यां हतां त्यांज लावीने ते बळदने बांधीने चालतो थयो हतो. घणोज श्रम लागवाथी अने कदीपण दोड नहीं करेली तेथी तेनी नसो त्रुटी जवाथी बंने बळद शुक्ल ध्याने मरी नागकुमारे देव थया. त्यांथी मनुष्यगती पामी मोक्ष पामशे. आ बंने बळद मरीने नागकुमारे देव पणे उपज्या ते वखते श्री महावीरस्वामीने नावमां बेसी गंगा उतरतां मिथ्यादृष्टी देवे उपसर्ग कर्यो हतो ते तेमणे निवार्यो हतो.

सार- -सारा अने धर्मी पुरुषना संगथी सारी मती अने गती थाय छे. कंबल अने संबल बळद हता पण जिनदास शेठ श्रावक धर्मीने त्या रह्या तो धर्म अनुष्ठान करता जोयुं अने तेथी जातीस्मरणज्ञान थतां पाछलो भव दीठो ने श्रावक धर्मी थइ उपवास करवा लाग्या अने अंते शुक्ल ध्यान ध्याइ देवगती पाम्या अने मोक्ष जशे. माटे सर्व मनुष्योए सारा—धर्मी पुरुषनीज सोबत करवी. (इति.)

भाग्यहीन स्त्री पुरुषनी कथा.

एक वनमां काष्ट लेवाने माटे एक दंपती स्त्री—पुरुष जतां हतां. तेओ निर्धन होई भाग्यहीन हतां. आ वखत आकाश मार्गे शिव पार्वतीनुं विमान जतुं हतुं. आ निर्धन स्त्री—पुरुषने काष्ट लेई जतां पार्वतीए दीठां अने तेथी तेमना उपर तेने दया आवी तेथी ते शिव प्रत्ये कहेवा लागी के, हे स्वामीनाथ ! आ बेउ निर्धन स्त्री—पुरुषने तमो सुखीआं करो. त्यारे शिवजीए कह्युं के, हे स्त्री ! ए बंनेना कर्ममां सुख छेज नहीं तो आपणे तेमने शी रीते सुखीआं

करी शकीए. भाग्य विना कदापी पण कोई वस्तु मळती नथी. आवां शीवजीनां वचन सांभळीने पार्वती बोल्यां के, ज्यारे तमाराथी आवा फक्त बे मनुष्यने सुखी करी शकाशे नहीं त्यारे तो तमारी उपासना कोण करशे. मने तो लागे छे के तमो एने सुखी करी शकशोज. पार्वतीना आवा बोल उपरथी जो के शिवजी जाणे अने समजे छे के भाग्य विना कांई पण मळतुं नथी तो पण स्त्रीने रीझववाने तथा तेनो बोल राखवाने शिवजीए ते बंने स्त्री—पुरुषनी आगळ रस्तामां काननुं कुंडळ नांख्युं. कुंडळ रस्तामा आवी पडवानी जरा वार आगमच आ बंने स्त्री—पुरुष भाग्यहीन होवाथी तात्काळीक तेमना मनमा एवो विचार उत्पन्न थयो के, आंधळा माणसो रस्तामां केवी रीते चालता हशे! जोईए तो खरां आम विचारी ते बंने भाग्यहीन स्त्री—पुरुष आंधळां माणसोनी चालवानी गतीनो अनुभव करवा माटे आंखो मींची चालवा लाग्या. तेथी करीने शिवजीए नाखेलुं कुंडळ तेओ जोई शक्या नहीं. अने कुंडळ ज्यानुं त्यांज पडयुं रह्युं. थोडेक दुर गयां त्यारे तेओए आखो उघाडी पण त्यां तो कांई हतुंज नहीं, के मळे. शिवजी अने पार्वती आ बनाव जोई भाग्यविना कांईपण कदी मळी शकतुं नथी एम निश्चय करी चालता थयां.

सार आ कथा उपरथी सार ए लेवानो छे के कोई पण सारो मनुष्य अगर देव आपवा धारे तोपण ते भाग्यविना मळतुंज नथी. माटे जे कांई जे समये बनवानुं छे ते कोई मिथ्या करनार नथी. कर्म अजमाववा उद्यम करवो.

दोहरो— भाग्यहिनकुं नवि मिले, भली वस्तुको भोग;
द्राख पके जब होत हे, काग मुखकं रोग.

स्तुति अने निंदा सरखी गणवी श्रेष्ट ए विषे कथा.

पाटलीपुत्र नगरने विशे धर्मवादी राजा राज्य करतो हतो. तेवामां त्यां त्रण मंत्रवादी आव्या. ते मंत्रवादीओए राजा आगळ आवीने जणाव्युं के अमे मंत्रवादी छीए; आथी राजाए तेमांना एकने कह्युं के शुं तमे जाणो छे ते मने कहो. त्यारे ते बोल्यो के मंत्र बळे हुं भूतने बोलावुं छु. त्यारे राजा बोल्यो के तमारुं भूत केवुं छे ? आथी मंत्रवादी बोल्यो के मारो भूत अति रुपवंत सिद्ध छे, पण ते भूतने, उंची दृष्टी करीने सामुं जुए ते मरे, अने तेने जोईने जे नीचुं जुए तेना सर्व रोग जाय अने निरामय थाय; ए वचन सांभळीने राजाए तेने दूर जवाने कह्युं अने कह्युं के मारे तेनो कशो खप नथी. पछी बीजा मंत्रवादीने बोलाव्यो, त्यारे ते कहेवा लाग्यो के मारो भूत अतीशे कुरुप छे पण जे कोई तेने देखी हसे नहीं स्तुति करे ते नीरोगी थाय अने जे निंद्या करे ते मरे. राजाए तेने पण कह्युं के मारे तेनो खप नथी. पछी त्रीजा मंत्रवादीने बोलाव्यो, ते कहेवा लाग्यो के मारो भूत कुरुप छे पण सारी नजरे के नठारी नजरे तेना सामु जुए तो तथा स्तुति करे के निंदा करे तो पण तत्काळ रोगथी मुक्त थाय. ए वचन सांभळीने राजा संतुष्ट थयो अने ते पंडीतने मान्यो अने पोतानी पासे राज्यसभामा राख्यो. बीजाओने यथायोग्य दान आपी राज रीत प्रमाणे वीदाय कीधा.

सार—— आ वात उपरथी सार ए लेवानो छे जे, जेनामां समविषमपणुं होय छे तेओ स्वार्थवाळाने त्यांज पुजाय छे एटले मान पामे छे परंतु जेओनामा समविषमपणुं एटले कोई ओछुं अधीक होतुं नथी, सर्व समान होय छे तेओ सर्वत्र पुजाय छे. हरेक मनुष्यमां आ गुणनी जरुर छे तो साधु पुरुषोमां तो अवश्य आ गुण होवोज जोईए. जे साधु त्रीजा भूतनी पेठे पोतानी स्तुति अगर निंदा सांभळीने रागद्वेष न करे तेज साधु खरा अने पूज्य जाणवा.

संकट परिसह उपर कथा.

हस्तीनापुर नगरने विशे माणेकचंद शेठ रहेतो हतो. तेमने नेमचंद नामे पुत्र हतो. ते नेमचंदे गुरु पासे धर्म पामीने दिक्षा लीधी. एक दिवसे ते साधु वनमा काउस्सग रहेला हता ते वनमा तेमनी आगळ थई एक चोर कोइनी एक गाय चोरीने चाल्यो जतो हतो, तेना गया पछी पाछळथी ते गायनो धणी आवीने साधुने कहेवा लाग्यो के अहींथी कोई पुरुष गाय लईने जतो जोयो ? साधुए काई जवाब दीधो नहीं अने मौनपणे रह्या. आथी ते गायना मालीकने बहुज रीस चडी. तेथी तेणे साधुना माथा उपर माटीनी पाळ करीने तेमां धगधगता अंगारा भर्या. आथी साधुने घणी वेदना थई तो पण लेशमात्र पोताना परीणाम बगाडया नहीं अने ते गायनो धणी के जेणे अंगारा, पाळ करी माथा उपर मुक्या हता तेना उपर जराए द्वेषभाव लावी तपी गया नहीं अने एकज परणामनी धाराए परीसह सहन करी पोतानुं साधुव्रत खरेखरुं साचव्युं. अंगाराना योग्ये देहनो नाश थाय ए संभवीतज छे. आथी साधुए चार आहारना पच्चख्खाण करी अनीत्य भावना भावी शेष रहेलु आयुष्य पुरु करी त्याज तत्काल अंतगढ केवळी थई मोक्षपद पाम्या.

सार—आ उपरथी कोई पण माणसे आपणने दु:ख दीधुं होय अगर आपणी चोरी करी होय के बीजी कोई रीते मन दुखाव्यु होय तो नेमचद मुनीनी पेठे धीरजथी ते खमी रहेवुं कारण के तेथीज मोक्ष सुखनी प्राप्ती थाय छे ए नक्की समजवुं.

तत्काळ बुध्दि उपर रींछ अने मनुष्यनी कथा.

कोई एक वटेमार्गुने वनमा जता एक रींछ मळ्यो. रींछे आवीने वटे मार्गुने पकडी पाडयो, त्यारे तेणे रींछना बे कान पकड्या. तेथी

रींछनुं कांई पण जोर चाल्यु नहीं. रींछे घणाए तळपा मार्या पण पेळा पुरुषे कान मुक्या नही अने बंने माहोमांहे अफलावा लग्या. एक बीजा वच्चे खेंचताण थतां वटेमार्गु पुरुषनुं वस्त्र फाटी गयुं. जेथी तेनी केडमां बांधेली सोना मोहारोनी वांसली छुटी जतां तेमांथी सघळी मोहोरो जमीनपर वेराई गई. ते वखते एक जड पुरुष त्यां थई जतो हतो ते आव्यो अने पुछवा लाग्यो के, आ शुं पडयुं छे ? आ वखते पेळा वटेमार्गुए तत्काल बुद्धि वापरी जवाब आप्यो के में आ रींछना कान झालीने अफलाव्या तेथी एना मुखमांथी आ नीचे पडया छे ते सोनईआ—सोना मोहोरो नीकळी पडी छे. एकाएकज आवो जवाब सांभळी ते उपर ख्याल कर्या शिवाय ते जड—मुर्ख पुरुषे ते वात साची मानीने कह्युं के, हे दीर्घदरशी—रुडी बुद्धिवाळा तु आ रींछना कान थोडीवार मने पण अफलावा दे, के जेथी हुं पण सोना मोहोरो प्राप्त करुं. आथी तेणे भोय पडली सोना मोहरो ते जड पुरुष पासथी पोतानी केडे बंधावीने पछी ते जड पुरुषने रींछना कान पकडवा आप्या अने पोते त्यांथी निकळी गयो.

सार रींछ जेवुं फाडी खानार प्राणी उपर धसी आव्युं परंतु ते वखते तात्कालिक बुद्धिए जो वटेमार्गुए तेना कान पकड्या न होत तो ते पोतानो जीव खुअत. तेमज बीजा पुरुषना पुछतां सोना मोहोरो माटे जवाब देता विलंब कर्यो होत तो ते चेती जात अने त्यांथी ते जात. माटे हरेक मनुष्ये तत्काल बुद्धि पोचाडी जे समये जे जवाब उचीत जणाय ते वगर वीळंबे देवो. जेथी कार्यनी सिद्धि थतां विघन नडतुं नथी.

स्वामीनुं चितेच्छित काम करनार मंत्रीनी कथा.

कोई एक राजा पोताना प्रधान सहीत सेना लई सेहेल करवा जतो हतो. जतां जता रस्तामां थोडाक गाउनी अटवी (वन)

आवी. ते अटवी ओळंगतां रस्तामां एक जगो उपर तेनो घोडो मुतर्यो. आ मुतरथी खाबोचीयुं भराणुं ते जमीने सोशी लीधुं नहीं अने थंबाई रह्यु आ भराई रहेलुं खाबोचीयुं राजाए जोयुं अने त्याथी आगळ चाल्या. सांजरे फरीने तेज रस्ते आव्या तो पेलुं मुतरनुं भरेलु खाबोचीयुं जेमनुं तेमज दीठुं. राजाए आथी विचार्यु के जो आ जगो उपर सरोवर होय तो तेनुं पाणी कदी सुकाय नहीं. राजाना मननो आ विचार तेनो मंत्री जे साथे हतो ते समजी गयो. अने पछी त्याथी घेर आव्या. राजा आ वात विसरी गया परंतु स्वामीनुं चित्तेच्छित काम करनार मंत्री ते भुली गयो नहीं. एणे घेर आवी थोडा दाहाडे एज जगा उपर सरोवर बधाव्युं. केटलाक दिवस वीती गया पछी पाछा तेज रस्ते राजानी स्वारी अगाउनी माफक नीकळी अने ज्यां घोडो मुतर्यो हतो त्या आवी जुवे छे तो जळथी भरपुर लेहेरा लेतुं सरोवर दीठुं. राजा मंत्रीने पुछवा लाग्यो के आ सरोवर कोणे खोदाव्युं ? त्यारे मंत्रीए जवाब आप्यो के हे राजन ! ए सरोवर आपनी इच्छानुसार में खोदाव्यु छे. आथी राजा घणो खुशी थयो अने मंत्रीने कहेवा लाग्यो के, हे मंत्री ! तें मारां मननुं इच्छित जाण्युं तेथी तुं महा बुद्धिवान छे तेमज तें मारी धारणा मुजब वगर कहे कहावे काम कराव्युं तेथी तुं स्वामीनी इच्छा पार पडेली जोवाने घणो आतुर छे एम सिद्ध थाय छे; माटे तुने धन्य छे.

सार आ कथाथी सार ए ग्रहण करवानो छे के, सेवकोए स्वामी–शेठनुं मन वरती लेई तेमनी इच्छानुसार काम वीना वीलंबे करवुं. जेथी तेमनी महेरबानी थतां पोतानुं कल्याण थाय छे.

मुग्ध शेठकी कथा. (हिन्दी भाषा)

जिनदत्त शेठका मुग्ध बुद्धिवाला मुग्ध नामका पुत्र था. वह पिताके प्रसादसे सदा मौज मजामें ही रहता था. बडा हुवा तब

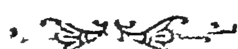
दसनर—सगे संबाधियो वाले शुद्ध कुलकी नंदीवर्धन शेठकी कन्यासे उसका बडे महोत्सवके साथ विवाह किया गया. अब उसे बहुत दफा व्यवहार संबंधी ज्ञान सिखलाते हुये भी वह ध्यान नहीं देता, इससे उसके पिताने अपनी अंतिम अवस्थामें मृत्यु समय गुप्त अर्थ वाली नीचे मुजब उसे शिक्षायें दी.

(१) सब तरफ दांतों द्वारा वाड करना. (२) खानेके लिये दूसरोंको धन देकर वापिस न मागना. (३) अपनी स्त्रीको बांधकर मारना. (४) मीठा ही भोजन करना. (५) सुख करके ही सोना. (६) हरएक गांवमें घर करना. (७) दुःख पडने पर गंगा किनारा खोदना. ये सात शिक्षायें देकर कहा कि, यदि इसमें तुझे शंका पडे तो पाटलीपुर नगरमें रहनेवाले मेरे मित्र सोमदत्त शेठको पूछना. इत्यादि शिक्षा देकर शेठ स्वर्ग सिधारे. परतु वह मुग्ध उन सातों हितशिक्षाओं का सत्य अर्थ कुछ भी न समझ सका. जिससे उसने शिक्षओंके शद्धार्थके अनुसार किया, इससे अंतमें उसके पास जितना धन था सो सब खो बैठा. अब वह दुःखित हो खेद करने लगा. मुर्खाईपुर्ण आचरणसे स्त्रीको भी अप्रिय लगने लगा. तथा हरएक प्रकारसे हरकत भोगने लगा, इस कारण वह महा मुर्ख लोगोंमें भी महा हास्यास्पद हो गया. अब वह अंतमें सर्व प्रकारका दुःख भोगता हुवा पाटलीपुर नगरमें सोमदत्त शेठके पास जाकर पिताकी बतलायी हुई उपरोक्त सात शिक्षाओंका अर्थ पूछने लगा. उसकी सब हकीकत सुनकर सोमदत्त बोला—मूर्ख ! तेरे बापने तुझे बडी कीमती शिक्षायें दी थी, परंतु तु कुछ भी उनका अभिप्राय न समझ सका, इसीसे ऐसा दुःखी हुवा है ! सावधान होकर सुन ! तेरे पिताके बतलाये हुए सात पदोंका अर्थ इस प्रकार है:——

तेरे पिताने कहा था कि (१) दांतो द्वारा वाड करना; सो दांतों पर सुवर्णकी रेखा बांधनेके लिये नही, परंतु इससे उन्होने तुझे यह सूचित किया था कि सब लोगोंके साथ प्रिय, हितकर योग्य वचनसे बोलना, जिससे सब लोक तेरे हितकारी हो. (२) लाभके लिये दूसरोंको धन देकर वापिस न मांगना, सो कुछ भिखारी याचक सगे संबधियोको दे डालनेके लिये नही बतलाया. परंतु इसका आशय यह है कि अधिक कीमती गहने व्याज पे रख कर इतना धन देना कि वह स्वयं ही घर बैठे विना मागे पीछे दे जाय. (३) स्त्रीको बांध कर मारना सो स्त्रीको मारनेके लिये नही कहा था परतु जब उसे लडका लडकी हो तब फिर कारण पडे तो पीटना परंतु इससे पहेले न मारना. क्यौं कि ऐसा करनेसे पीहरमें चली जाय या अपघात करले या लोगोंमें हास्य होने लायक बनाव बन जाय. (४) मीठा भोजन करना, सो कुछ प्रतिदिन मिष्ट भोजन बनाकर खानेके लिये नही कहा था, क्योंकि वैसा करनेसे तो थोडे ही समयमें धन भी समाप्त हो जाय और बीमार होनेका भी प्रसंग आवे. परंतु इसका भावार्थ यह था कि जहा आपना आदर बहुमान हो वहां भोजन करना क्यौंकि भोजनमे आदर ही मिठास है अथवा संपूर्ण भूख लगे तब ही भोजन करना. विना इच्छा भोजन करनेसे अजीर्ण रोगकी वृद्धि होती है. (५) सुख करके सोना सो प्रतिदिन सो जानेके लिये नही कहा था परतु निर्भय स्थानमें ही आकर सोना. जहां तहा जिस तिसके घर न सोना. जागृत रहनेसे बहुत लाभ होते है. संपूर्ण निद्रा आवे तब ही शय्यापर सोनेके लिये जाना क्यौंकि, आंखोमें निद्रा आये बिना सोनेसे कदाचित् मन चिंतामें लग जाय तो फिर निद्रा आना मुश्किल होता है, और चिंता करनेसे शरीर व्यथित हो दुर्बल होता है, इस

लिये वैसा न करना. या जहां सुखसे निद्रा आवे वहां पर सोना यह आशय था. (६) हरएक गांवमें घर करना जो कहा है उसमें यह न समझना चाहिये कि गांव गांवमें जगह लेकर नये घर बनवाना. परंतु इसका आशय यह है कि, हरएक गांवमें किसी एक मनुष्यके साथ मित्राचारी रखना. क्योंकि किसी समय काम पडने पर वहां जाना हो तो भोजन शयन वगैरेह अपने घरके समान सुख पूर्वक मिल सके. (७) दुःख आनेपर गंगा किनारे खोदना जो बतलाया है सो दुःख पडनेपर गंगा नदी पर जानेकी जरूरत नही परंतु इसका अर्थ यह है जब तेरे पास कुछ भी न रहे तब तुम्हारे घरमें रही हुई गंगा नामकी गायको बांधनेका स्थान खोदना. उस स्थानमें दबे हुये धनको निकाल कर निर्वाह करना.

शेठके उपरोक्त वचन सुन कर वह मुग्ध आश्चर्यमें पडा और कहने लगा कि, यदि मैंने प्रथमसे ही आपको पूछ कर काम किया होता तो मुझे इतनी विडंबनायें न भोगनी पडती. परंतु अब तो सिर्फ अंतिम ही उपाय रहा है. शेठ बोला—खेर जो हुवा सो हुवा परंतु अबसे जैसे मैंने बतलाया है वैसा वर्ताव करके सुखी रहना. मुग्ध वहांसे चलकर अपने घर आया और अपने पुराने घरमें जहां गंगा गायके बांधनेका स्थान था वहां खोदनेसे बहुतसा धन निकला जिससे वह फिरभी धनाढ्य बन गया. अब वह पिताकी दी हुई शिक्षाओंके अभिप्राय पूर्वक वर्तने लगा. इससे वह अपने माता पिताके समान सुखी हुवा. *



* यह कथा हिन्दी कथाओंके साथमेंही छपवाने वास्ते कंपोझ कराइथी परंतु भुलसे रह गइ और पृष्ठ ७१ से प्रश्नोत्तर छप जानेसे और यह कथा वैसीही रह जानेसे गुजराती भाषाके कथाओंके साथमें ही यहांपर छपवाइ है.

अनेक विषयोना प्रश्नोत्तरो

प्रश्न १ महा श्रावक कोने कहेवाय? तेना केवां लक्षण कह्यां छे?

उत्तर—"श्रावक योग्य द्वादश व्रतोनुं विधिवत् पालन करे, प्रसिद्ध सात क्षेत्रोमां स्वधन वावे अने दीन दुःखी जनो उपर खास करीने अनुकंपा राखे, तेमा पण सीदाता साधर्मी जनोने हरेक रीते उद्धार करे ते "महा श्रावक" कहेवाय छे" ए रीते श्री हेमचंद्र सुरिजीए 'योगशास्त्र' मा प्रकाशेलुं छे.

प्रश्न २ श्रावकोनो मुख्य शृंगार कयो कह्यो छे?

उत्तर—श्री जिनपूजा, विवेक, सत्य, शौच अने सुपात्रदान एज श्रावकपणानो खरो प्रभाविक शृंगार जाणवो.

प्रश्न ३ श्री जिनेश्वर प्रभुनी पूजा-सेवा करवाथी शो लाभ थाय छे?

उत्तर—श्री जिनेश्वर प्रभुनी पूजा-सेवा करवाथी चिन्तामणि रत्ननीपेरे सर्व वांछित पूर्ण थाय छे. जगत्मां परम पूज्यभावने पामे छे, धन धान्यादिक ऋद्धि अने कुटुंब परिवार, मान, महत्व, प्रतिष्ठादिकनी वृद्धि पामे छे, तेमज वळी तेथी जय, अभ्युदय, रोगोपशान्ति, सन्तान, प्रमुख मनोभीष्ट अर्थनी सिद्धि थइ शके छे, माटे भाग्यवत भाइ ब्हेनोए प्रमाद दोष दूर करीने त्रिकाळ प्रभुपूजा-भक्ति यथाविध करवा तत्पर रहेवुं युक्त छे.

प्रश्न ४ "प्रभावना" कोने कहीए? अने प्रभावनाथी केवा लाभ थइ शके?

उत्तर अट्ठाइ महोत्सव, स्नात्र उत्सव, श्री पर्युषणा कल्पचरित्र पुस्तकनुं वाचवुं, तथा सीदाता साधर्मी जनोने पुष्ट आलंबन आपी तेमनो उद्धार करवो ए विगेरे जेथी श्री जिनशासननी उन्नति-

थाय ते सर्व " प्रभावनाज " जाणवी. भावना करतां प्रभावना अधिक छे केमके भावना तो केवळ पोतानेज लाभकारी थाय छे. त्यारे प्रभावना ते स्वपर उभयने लाभकारी थाय छे.

प्रश्न ५ द्रव्य अने भाव स्तवरुप धर्म आराधना करवानी शी मर्यादा कही छे ?

उत्तर—— शास्त्रमां अधिकारी परत्वे (योग्यता प्रमाणे) धर्म साधवानी मर्यादा बतावी छे. एटले के गृहस्थोने द्रव्य स्तवना अधिकारी कह्या छे, त्यारे मुनि जनोने भाव स्तवना अधिकारी जणाव्या छे.

प्रश्न ६ धर्मनु संक्षिप्त लक्षण शुं छे ? अने तेनो केवो प्रभाव छे ?

उत्तर—— अहिंसा, संयम अने तप लक्षणवाळो धर्म दुनियामा उत्कृष्ट मंगळरुप छे. तेमां जेनुं चित्त सदाय रम्या करे छे तेने देवताओ पण नमस्कार करे छे तो पछी बीजाओनुं तो कहेवुंज शुं ? धर्मना प्रभावथी धम्मिलादिकनी पेरे इच्छित सुखसंपदा सेहेजे संप्राप्त थाय छे.

प्रश्न ७ धर्म शास्त्रनुं श्रवण करवाथी शु फळ थाय ? अने कोनी पेरे ?

उत्तर शास्त्र श्रवणथी धर्म कार्य करवांमा उद्यम करी शकाय, सारी बुद्धि आवे, खरा खोटानो निर्णय थाय. त्याज्यात्याज्य, भक्ष्याभक्ष्यादिकनो विवेक जागे, संवेग–शाश्वत सुख मेळववा अभिलाषा जागे, अने उपशम–कषायनी शांति थाय. आ प्रमाणे शास्त्रश्रवण करतां अनेक लाभ थाय छे, जेम रोहिणीया चोरे श्री वीर प्रभुना मुखथी एक गाथा सांभळी स्वकल्याण साध्युं हतुं तेम अथवा " यवराजर्षिने आनायासे सांभळेली त्रण गाथा गुणकारी थइ हती तेम भवसमुद्रमां बुडतां माणसोने ज्ञान जहाझ तुल्य छे तेमज मोह अंधकारने टाळवा माटे ज्ञानसूर्यमंडळ समान उपकारी थाय छे.

प्रश्न ८ श्री जिन भवन कराववा अधिकारी (लायक) कोने जाणवो ?

उत्तर—— न्याय नीतिवडे उपार्जित द्रव्यवाळो, मतिमान्, उदार दीलवाळो, सदाचारवंत अने गुरुने तेमज राजादिकने मान्य होय तेने जिनभवन कराववा लायक जाणवो.

प्रश्न ९ धर्मशाळा के पौषधशाळाथी शो लाभ थइ शके ?

उत्तर—— मुनिजनोना निवासपूर्वक त्या धर्म श्रवण, प्रतिक्रमणादिक उत्तम करणी थइ शके. कइ आत्मार्थी जनो गुरु समीपे आवी साधु श्रावक योग्य व्रतोने ग्रहण करी महा पुन्य उपार्जी शके. वळी जेम कुरुक्षेत्रमां स्नेहीजनोने पण क्लेशबुद्धि प्रगटे छे तेम धर्मशाळामा के पौषधशाळामा अधमजनोने पण धर्मबुद्धि जागे छे. आम अनेक रीते ते शाळा अनेक भव्यात्माओने बोधिबीज प्राप्ति माटे हेतुरुप थाय छे. तेथी तेनुं निर्माण करावनारा भव्यजनो संसार सागरने तरी परमपद रूप मोक्ष तेने पामे छे.

प्रश्न १० गुरु समीपे कोइ पण प्रकारना व्रतनियम ग्रहण करवाथी कोनी पेरे लाभ थाय ?

उत्तर—— पूर्वे वकचुल नामना राजपुत्र अजाण्यां फळ, राजानी पटराणी, कागडानुं मांस अने १० डगला पाछा ओसरी पछी घा करवा संबंधी करेला नियमो तेना जीवित विगेरेनी रक्षा माटे थया हता तेमज कुंभारनी टाल जोया पछी भोजन करवाना नियमथी श्रेष्ठीपुत्र कमळने केटलाक काळे सोनाना चरुनो लाभ थता ते पछी परम श्रावक थयो हतो, ए रीते नियमथी घणाज लाभ छे.

प्रश्न ११ विषय इंद्रियने परवश पडेल प्राणीओना केवा हाल थाय छे ?

उत्तर—— ज्यारे एक एक इंद्रियना विषयमा लुब्ध बनेला बापडा पतंगीया, भमरा, माछलां हाथीओ अने हरणीया प्राणांत कष्ट पामे

छे त्यारे जे मूढ जनो मोहथी अंध बनी एकी साथे ए पाचे इंद्रियोना विषयोमां लीन बन्या रहे छे तेमनुं तो कहेवुं ज शु ? आ भवमां परतंत्रादिक प्रगट दु:खने पामे छे अने परलोकमा नीची गति पामे छे.

प्रश्न १२ नवकार (नमस्कार) महामंत्रनुं स्मरण क्यारे क्यारे ने केवी रीते करवुं उचित छे ? अने तेनाथी शा शा लाभ संभवे छे ?

उत्तर भोजन समये, शयन करतां, जागतां, प्रवेश करतां, भय अने कष्ट समये यावत् सर्वकाळे सदाय नवकार महामंत्रनुं निश्चे स्मरण कर्याज करवुं. मरण वखते जे कोइ ए महामत्रने धारी राखे छे तेनी सद्‌गति थाय छे. ए महामंत्रनु स्मरण करी करीने अनेक जनो संसार समुद्रनो पार पाम्या, पामे छे अने पामशे. "उत्साह सहित" प्रमाद रहित गणवामां आवता नवकारना प्रभावथी सर्व उपद्रवो तत्काळ शमी जाय छे, सर्व पाप विलय पामे छे अने सर्व प्रकारना भय नष्ट थइ जाय छे.

श्री जिनेश्वरमां पोतानु लक्ष स्थापी प्रसन्न चित्ते, सुस्पष्ट रीते, श्रद्धायुक्त अने विशेषे करीने जितन्द्रिय सतो जे कोइ श्रावक "एक लाख नवकार मंत्र" जपे छे अने एक लाख श्वेत अने सुगंधी पुष्पोवडे यथाविधि जिनेश्वर भगवानने पूजे छे ते जगत् पूज्य श्री तीर्थंकरनी पद्वी प्राप्त करे छे.

वळी ए महामंत्र दुःखने दूर करे छे, सुखोने पेदा करे छे, यश कीर्त्ति प्रसरावे छे, भवनो पार करे छे. ए रीते आ लोकमा अने परलोकमां सर्व सुखना मूळरूप ए महामंत्र छे. वधारे शुं ? पण तिर्यच—पशु पंखी पण अन्त वखते ए महामंत्रना स्मरणथी सद्‌गति पामे छे.

प्रश्न १३ न्याय मार्गे चालवाथी आ लोकमां तेमज परलोकमा शा शा फायदा थाय छे ?

उत्तर— न्याय—नीतिना मार्गे एक निष्ठाथी चालतां आ लोकमा

યશ, કીર્તિ, મહત્ત્વ
પરભવમાં સદ્ગતિ,
શાશ્વત સુખ મળે છે
તિર્યંચો પણ સહાયભૂ
નારને તેનો સગો ભાઈ
પ્રવૃત્ત થયેલા રાવણને તજી તેનો બંધુ બિભીષણ ચાલ્યો ગયો હતો અને તેણે ન્યાય માર્ગમાં પ્રવૃત્ત એવા રામચંદ્રજીનો પક્ષ (આશ્રય) લીધો હતો. કોઇ પણ રાજા ન્યાયવંત, ધર્માત્મા હોય છે ત્યારે તેનું " રામ-રાજ્ય " કહેવાય છે.

પ્રશ્ન ૧૪ સાત વિકથાઓ સાંભળવામાં આવે છે તે કઇ ?

ઉત્તર— ૧ સ્ત્રીકથા, ૨ ભક્તકથા, ૩ દેશકથા, ૪ રાજકથા, ૫ મૃદુકારુણિકા કથા, ૬ દર્શન ભેદિની કથા. અને ૭ ચારિત્ર ભેદિની કથા આ સાત વિકથાઓ જાણવી.

પ્રશ્ન ૧૫ પાક્ષિક, ચઉમાસી, અને સંવચ્છરી પ્રતિક્રમણમાં ક્યાંથી આરંભીને ક્યા સુધી છીંકને વર્જવી ?

ઉત્તર ચૈત્યવંદનથી આરંભી શાંતિ સુધી છીંક વર્જવી. એમ પરંપરા છે. (સેન પ્રશ્ન ૨૧)

પ્રશ્ન ૧૬ સંધ્યાનું પ્રતિક્રમણ કર્યા પછી શ્રાવક દેરાસર દર્શન કરવા જઇ શકે ?

ઉત્તર— જઇ શકે. ઉપાશ્રયમાં ગુરુમહારાજ સમક્ષ પ્રતિક્રમણ કર્યું હોય તો પ્રતિક્રમણ કરી ગુરુ મહારાજની વૈયાવચ્ચ કરી ગામનાં દેરાસરમાં દર્શન કરી પોતાના ઘેર જાય. (આચારોપદેશ ગ્રંથ પાંચમાં વર્ગમાં શ્લોક ૯ તથા ૧૦)

પ્રશ્ન ૧૭ જ્ઞાનની વૃદ્ધિ કરનારા નક્ષત્રો ક્યા ?

ઉત્તર— ૧ મૃગશિર, ૨ પુષ્ય, ૩ આર્દ્રા, ૪ પૂર્વા ફાલ્ગુની,

५ पूर्वाषाढा, ६ पूर्वा भाद्रपद, ७ मूळ, ८ अश्लेषा, ९ हस्त, अने १० चित्रा, आ दश नक्षत्रोने ज्ञाननी वृद्धि करनारा कह्या छे.

प्रश्न १८ चउविहार प्रत्याख्यानमां अणाहार वस्तु कल्पे ?

उत्तर चउविहार प्रत्याख्यानमां लींबडो, गळो, एळीओ, त्रीफळा, कडु करियातुं आदि वस्तु कारणे कल्पे. अणाहार वस्तु पण कारणविना नित्य स्वादने अर्थे अथवा उदर पूर्तिने अर्थे लेवा न कल्पे.

प्रश्न १९ सुकायेलु आदु (सुंठ) जो खावाना उपयोगमां लइ शकाय तो ते प्रमाणे बीजा बटाटा विगेरे कंदमूळ वस्तु पण सुकवीने वापरवामां शी अडचण ?

उत्तर—— सुंठ ए एक हलका औषध तरीके उपयोग करवामा आवे छे, अने ते स्वाभावीक बनावेली तयार मळे छे. ते शाकनी माफक वधारे प्रमाणमां लइ शकाती नथी. बटाटा प्रमुख बीजा कंदमूळो आसक्तिथी खावामा आवे छे अने ते खास पोताना माटेज सुकावी राखवा पडे छे. अने वधारे प्रमाणथी लेवाय छे अने वधारे प्रमाणमा वापरवाथी घणाज जीवोनी हिंसानो प्रसंग आवे. तेथी तेवी वस्तुओ बनावीने तेनो खावामां उपयोग करवो नही.

प्रश्न २० साध्वीजी महाराज श्रावक समुदाय सन्मुख व्याख्यान करी शके के नहि ?

उत्तर—— मुनिमहाराज न होय तो साध्वीजीओ बाइयोनी सामे व्याख्यान करे, पुरुषो तो पडखे बेसीने सांभळे ते जुदी वात छे.

प्रश्न २१ साध्वीजी महाराज पुरुषोना मस्तक पर वासक्षेप करी शके ?

उत्तर धर्ममां पुरुषोत्तमता होवाथी साध्वीजी पुरुषना मस्तक पर वासक्षेप करे ते उचित नथी.

-:०:-

सदबोध पद्यावली संग्रह.

वैराग्यनुं पद पहेलुं

(वंदना वंदना वंदनारे, गिरिराजकुं सदा मेरी वंदना–ए चाल)

॥ तानमां तानमा तानमा रे, मत राचो संसारना तानमां ॥ एक दिन बाजी सर्व छोडीने, सुवुं पडशे शमशानमां रे ॥ मत राचो० ॥ १ ॥ धन यौवनना मदमां मातो, अधिक रहे मन मानमां रे ॥ ॥ मत० ॥ तप जप व्रत पच्चखाण न करतो, अभक्ष भक्षे खानपानमा रे ॥ मत० ॥ २ ॥ आरंभी करी बहु प्राणी पीडे, समझे नहि तुं सानमा रे ॥ मत० ॥ कूड कपट छल भेद करीने, तिर्यंच थशो मरी [1]रानमा रे ॥ मत० ॥ ३ ॥ जीभ तणो वश लेवा काजे, विकथा करे दोय[2] ध्यानमां रे ॥ मत ० ॥ देवगुरु जैनधर्म निंदीने, पडशो नरक दुःखाणमा रे ॥ मत० ॥ ४ ॥ धरमीजन देखीने हसतो, गर्व अधिक गुमानमारे ॥ मत० ॥ अशुभ कर्म हसतां जेह बांधे, रोता न छुटशे [3]रानमा रे ॥ मत० ॥ ५ ॥ चरी चोमासुं साढ जेम मातो, तेम कुदे अभिमानमा रे मत० ॥ झगडा करतो जात लजावे, मोह मिथ्यात्व मेदानमां रे ॥ मत० ॥ ६ ॥ लाडी वाडी ने गाडी घोडा थी, शुं मोह्यो सदा तेना [4]वानमा रे ॥ मत० ॥ मेडी मोलातो बागने बंगला, छोडी जवुं [5]आवशानमा रे ॥ मत० ॥ ७ ॥ पाप तणा बहु पोटला बांध्या, पर दुःख दई अभिमानमा रे ॥ मत० ॥ आव्यो तु एकने एकलो जाइश, पुन्य पाप दो जणा [6]जानमा रे ॥ मत० ॥ ८ ॥ पडी जाशे पलमा तुज काया, अंते ताहरी ते [7]जाणमा रे ॥ मत० ॥ क्षण क्षण करी घटतुं तुज आयु, माची रह्यो शुं मानमां रे

१ जंगल. २ आर्त ने रोद्र. ३ जंगल. ४ रूपमां ५ मरणवेळा. ६ पर लोकनी जानमां. ७ नहि जाण.

॥ मत० ॥ ९ ॥ सद्गति दाता सद्गुरु वचणा, सांभळे नहि तुं कानमां रे ॥ मत० ॥ मारुं मारुं करतो मन माचे, ताहरुं नथी तिल मानमां रे ॥ मत० ॥ १० ॥ परोपकार कर्यो नहि पापी, शुं सम जावुं सानमां रे ॥ मत० ॥ नाथ निरंजन नाम जप्युं नहीं, निश-दिन रहे दुर्ध्यानमा रे ॥ मत० ॥ ११ ॥ कांईक सुकृत काम करी ले, चित्त राखी प्रभु ध्यानमां रे ॥ मत० ॥ साचो संबल साथे लेजो, रवि मन राखी ज्ञानमां रे ॥ मत राचो० ॥ १२ ॥ (इति)

॥ पद बीजुं (वैदर्भी वनमां वलवले—ए राग.)

॥ चेती ले तुं प्राणिया, आव्यो अवसर जाय ॥ स्वारथिया संसारमा, हेते शुं हरखाय. ॥ चेती० ॥ १ ॥ जन्म जरा मरणादिके, साचो नहि स्थिर वास ॥ आधि व्याधि उपाधिथी, भवमां नहि सुख वास. ॥ चेती० ॥ २ ॥ रामा रुपमा राचीने, जोयुं नहि निज रुप ॥ फोगट दुनीया फंदमा, सहेतो विषमी धूप. ॥ चेती० ॥ ३ ॥ मात पिता भाइ दीकरा, दारादिक परिवार ॥ मरतां साथ न आवशे, मिथ्या सहु संसार. ॥चेती०॥ ४ ॥ चिंतामणि सम दोहीलो, पाम्यो मनु अवतार ॥ अवसर आवो नहि मळे, तार आतम तार. ॥ चेती० ॥ ५ ॥ जेवी संध्या वादळी, क्षणमां विणशी जाय ॥ काचकुंभ काया कारमी, देखी शुं हरखाय. ॥ चेती० ॥ ६ ॥ माया ममता परिहरी, भजो श्री भगवान् ॥ करवुं होय ते कीजीए, तप जप पूजा दान ॥ चेती० ॥ ७ ॥ केइक घाल्या घोरमां, बाल्या केइ मशाण ॥ आंख मींचाए शून्यता, पडता रहेशे प्राण. ॥ चेती० ॥ ८ ॥ वैराग्ये मन वाळीने, चालो शिवपुर वाट ॥ बुद्धिसागर माडजो, धर्म रत्ननुं हाट. ॥ चेती० ॥ ९ ॥ इति.

॥ पद त्रीजुं (कानुडो न जाणे मोरी प्रीत—ए राग).

॥ चेतन स्वारथीयो संसार, सगपण सर्वे खोटां रे ॥ चेतन० ॥ जुठी छे काया वाडी, न्यारी छे गाडी लाडी ॥ फोगट शाने मन फुलाय, अंते

सर्व जाशे रे. ॥ चेतन० ॥ १ ॥ हाके धरणी ध्रुजावे, भय तो दीलमां नही लावे ॥ चाल्या रावण सरखा राय, पांडव कौरव योद्धारे. ॥ चेतन० ॥ २ ॥ स्वारथथी जुठां बोले, स्वारथथी जुठां तोले ॥ स्वारथ माटे युद्धो थाय, लडतां रंकने राणा रे. ॥ चेतन० ॥ ३ ॥ स्वारथथी नीति त्यागे, स्वारथथी पाये लागे ॥ स्वारथ कपट कळानुं मूळ, पाप अनेक करावे रे. ॥ चेतन० ॥ ४ ॥ स्वारथमा सर्व डुल्या, भणतर भणीने भुल्या ॥ स्वारथ आगळ सत्य हणाय, अंधा नरने नारी रे. ॥ चेतन० ॥ ॥ ५ ॥ स्वारथथी मस्तक कापे, स्वारथथी पदवी आपे ॥ स्वारथ आगळ शानो न्याय, बेहेरा आगळ गाणु रे. ॥ चेतन० ॥ ६ ॥ स्वारथथी वीरला छुटया, स्वारथमा सर्व खुंच्या ॥ जगमा स्वार्थतणो परपंच, न्याय चुकादा मेळो रे. ॥ चेतन० ॥ ७ ॥ धर्मी स्वारथने त्यागे, दीलमां आतमना रागे ॥ तम रविकिरणे स्वारथ नाश, होवे आतम ज्ञाने रे ॥ चेतन० ॥ ८ ॥ परमारथ प्रीति धारी, सेवो गुरु उपकारी ॥ बुद्धिसागर धरजो धर्म, दुनीया सर्व विसारी रे. ॥ चेतन० ॥ ९ ॥ (इति.)

कलदार स्वरूप पद. (मान मायाना करनारा रे-ए देशी)

॥ सुखकारा जगत सुखकारारे, एक देखा अजब कलदारा ॥ मन मोहे टनन टनकारारे ॥ एक देखा० (अचली) पास होवे कलदार जिन्होंके, वे ही जगत सरदारा ॥ गुणी नहीं पिण गुणी कहावे, जन्म सफल संसारा रे ॥ एक० ॥ १ ॥ बंक बिल्डींगे हाट हवेली, कलदारका चमकारा ॥ राजे महाराजे खालम खाली, कलदार विन भंडारा रे ॥ एक० २ ॥ कलदारसे कुलवान कहावे, कलदारसे मिले दारा ॥ कलदार रोटी कलदार कपडे, कलदार स्त्री शृंगारारे ॥ एक० ३ ॥ कलदार मोटर कलदार बग्गी, कलदार गज हुशियारा ॥ कलदार घोडा कलदार पाला, कलदार सब व्यवहारारे ॥ एक० ४ ॥ कलदार जे. पी. कलदार नाइट, कलदार मामलतदारा ॥ कलदार लीडर कलदार

ऍटलो, कलदार कुल मुखतारारे ॥ एक० ५ ॥ कलदार गाडी कलदार वाडी, कलदार होटल सारा ॥ कलदार खुरसी कलदार गादी, कलदार बैठनहारारे ॥ एक० ६ ॥ कलदार विद्या कलदार हुन्नर, कलदार खिजमतगारा ॥ कलदार सूरत कलदार बुद्धि, कलदार बोलनवारारे ॥ एक० ७ ॥ कलदार बेटा कलदार बापु, कलदार भाई प्यारा ॥ कलदार मामा कलदार काका, कलदार साला सारारे ॥ एक० ८ ॥ कलदार बाबू कलदार राजा, कलदार सेठ साहुकारा ॥ कलदार बत्ती कलदार दीवा, कलदार विन अंधारारे ॥ एक० ९ ॥ कलदार दौलत कलदार औरत, कलदार वस जग सारा ॥ कलदार कलदार कलदार कलदार, कलदार जग जयकारारे ॥ एक० १० ॥ वसमें नहिं कलदारके साधु, आतम लक्ष्मी आधारा ॥ कलदार विन मुनि वल्लभ जगको, हर्ष अनुपम धारारे ॥ एक० ॥ ११ ॥ (इति)

परनारीका त्याग करनेपर पद.

दोहा– पाप मत करो प्राणीया, पाप तणा फल एह ॥ पापके कारण जाणजो, अग्नि में भूजे देह ॥ १ ॥ परनारी पयनी बुरी, तीन ठोडसे खाय ॥ धन घटे जोबन घटे, पत पंचोमें जाय ॥ २ ॥ परनारीके कारणे, राजा रावण जाण ॥ तीन खंडको साहिबो, नर्क योनीमें जाय ॥ ३ ॥ इस कारण तुं देखले, नर्क दुःख अण पार ॥ वाक हमारा है नहीं, अब क्यौं रोवे गिवार ॥ ४ ॥ परनारीको देखकर, मनमें अति हरखाय ॥ इसी पापके कारणे, नरवंस उसको जाय ॥ ५ ॥ चोथी नरक जो भोगवे, राजा रावण जाण ॥ परनारीके कारणे, तज्यो आपनो प्राण ॥ ६ ॥ (इति)

(मेरे मौला बुलालो मदीने मुझे– ए चाल)

॥ पर नारीसे प्रीत लगावो मती, धन योवन विरथा गमावो मती ॥ पर० (अंचली) परनारीके प्रसंगसे, रावनकी क्या हालत भई ॥

लंका गई इजत गई, और जान भी जाती रही ॥ ऐसे जानके प्रीत लगावो मती ॥ पर० ॥ १ ॥ परनारीके प्रसंगसे, मणीरथसे फणी-धर लडा ॥ नारी मीली ना धन मीला, और नर्क भी जाना पडा ॥ ऐसे जातीको नीचे दिखावो मती ॥ पर० ॥ २ ॥ परनारी के प्रसंगसे, पद्मोतरकी बिगडी गती ॥ अपयश हुवा जीता मुवा, श्री कृष्णको सौंपी सती ॥ ऐसे लज्या हीन कहाओ मती ॥ पर० ॥ ३ ॥ परनारी है छानी छुरी, देखो कहीं लग जायगी ॥ बचा रहो इनसे सदा तो, जिंदगी बच जायगी ॥ प्यारे विषयनमें ललचाओ मती ॥ पर० ॥ ४ ॥ हसका कहना यही, परनारकी सोबत तजो ॥ ज्ञान सीखो तप करो, भगवानको शुद्ध मन भजो ॥ बुरी बाता पै ध्यान लगावो मती ॥ पर० ॥ ५ ॥ (इति)

सट्टाका त्याग करनेपर पद

(अलख देखमें वास हमारा, मायासे हम है न्यारा—ए चाल)

॥ कहे सेठाणी सुणो सेठजी, सट्टो थे तो करो मती ॥ सट्टाको रुजगार बुरो हे, केइ बिगड गये क्रोडपति ॥ (अंचली) पेला में तो नही समजती, सट्टाको रुजगार किसो ॥ जब सट्टामें लगी समझने, सट्टे कर दियो असो मसो ॥ केई जणा तो बिगड गया है, केई लगा गया संमत मिति ॥ सट्टाको० ॥ १ ॥ चंद्रहार बोझामें दीनो, टुस्सी दीनी बोरीमें ॥ गेंद दिया गालियां के माहि, बिलकुल हो गई कोरी में ॥ आगे थाने घणा वराजिया, थे नही मान्या मेरा पति ॥ सट्टाको० ॥ २ ॥ थें मागी सघली दे दीनी, एसी हो गई भोली में ॥ सट्टो कदी करो मत सेठा, आगो बालो होली में ॥ हाट हवेली सवली वेची, सोनो रुपो रती रती ॥ सट्टाको० ॥ ३ ॥ ऊचा नीचा भाव जो आवे, जदी सट्टावाला घबरावे ॥ बारे बजा लग निंद न आवे, आर्त्तध्यानमें लग जावे ॥ अबे थें काइ मने वेच-

सो, बिगड गइ हे बुद्ध मती ॥ सट्टाको० ॥ ४ ॥ खोयो घणो कमायो थोडो, फस गया खोटा धंधा में ॥ वरण नही चुकावोगा तो, लोग मारसी दोठा में ॥ लोग दिवाल्या थांने केसी, सुण्या नही जावे मेरा पति ॥ सट्टाको० ॥ ५ ॥ दो हजार जावदमें गुमाया, दस हजार मंमाईमें ॥ आडतीया की चिठी आइ, थांने बांच सुणाई में ॥ कहे सेठाणी सुणो सेठजी, सोचतो दिलमें करो मति ॥ सट्टाको० ॥ ६ ॥ संवत् उगणीसो साल पिच्चोतर, फागण मासमें ख्याल रची ॥ रतनलाल युं कहे सभा में, सट्ट कर दियो असो मसो ॥ बडे बडे साहुकार जिनकी, बिगड गई बुद्धि मति ॥ सट्टाको० ॥ ७ ॥ (इति)

रामा।

वाचकोंको खास जरूरी सुचना.

सब कोइ भव्यात्माओंको पवित्र ज्ञानामृतका अपूर्व लाभ अनुकुलतासे मीले इस शुभ इरादेसे भेट तरीके या अल्प मूल्यमें देनमें आनेवाली कोई पुस्तकपर ममत्व बुद्धि रखकर पुस्तकका दुरुपयोग करना नही. परंतु प्रमाद रहित पुरी जिज्ञासा रख कर उस पुस्तकका आप वांचके लाभ लेकर दूसरे जिज्ञासु भाइ बहेनोंको पुस्तकका वांचनका लाभ सबकुं छूटसे लेने देना. और इसी तरहसे दुगुणा लाभ मिलाकर पुस्तकका पवित्र उद्देश सफल करना. इस तरहकी हर भाई बहनोंको नम्रतासे सूचना करनेमें आती है. जिस उच्च उद्देशसे पुस्तको देनेमें आती है उसको सफल बनाना और ग्रन्थकी किसी प्रकारसे आशातना नही करनी यही वाचकोंको विनंति है. संवत १९९३ ज्ञान पंचमी.

आपका शुभेच्छक. शाह. शिवनाथ लुंबाजी-पोरवाल.